अनन्त की ओर

लेखक

रामचन्द्र

अध्यक्ष

श्री रामचन्द्र मिशन

शाहजहाँपुर, उ०प्र०

प्रथम संस्करण —2000 प्रतियाँ 1958
द्वितीय संस्करण—2000 ,, 1981

©प्रकाशन विभाग
श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर (उ०प्र०)
भारत वर्ष

मूल्य { ८ रु० सजिल्द
६ रु० अजिल्द

मुद्रक :—देव भारती प्रेस
10, दरभंगा कालोनी, इलाहाबाद-211002

(भारत सरकार से प्राप्त रियायती दर के कागज पर मुद्रित)

सम्पादकीय टिप्पणी

आध्यात्मिक क्षेत्र में श्री रामचन्द्र जी महाराज (संस्थापक-अध्यक्ष, श्री रामचन्द्र मिशन, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश) की अनुपम कृतियों में से "अनन्त की ओर" का यह द्वितीय संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ा हर्ष है। लेखक के कतिपय टिप्पणियों एवं परिशिष्टों के समावेश से प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि उच्चतम स्थिति-"अनन्त"-की अनुभूति के लिये यह कृति अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होगी।

लक्ष्मी शकर
अधीक्षक
प्रकाशन विभाग
श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर, उ०प्र०

बसंत पंचमी
9-2-1981

अनन्त की ओर

अनुक्रम

१.	दो शब्द	i
२.	प्राक्कथन	x
३.	ज्ञान	१
४.	ग्रन्थियाँ	६
५.	अन्तिम दशा	४३
६.	परिशिष्ट–१	६०
७.	परिशिष्ट–२	६३

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दो शब्द

शाहजहांपुर निवासी श्री रामचन्द्र जी महाराज की कृति 'अनन्त की ओर' की यह भूमिका लिखने का आमंत्रण मैंने अत्यन्त विनीत भाव से ही स्वीकार किया। जब मैंने पुस्तक की पांडुलिपि पढ़ी तो यह अनुभव किया कि वास्तव में संसार को इस पुस्तक का परिचय देने की पर्याप्त योग्यता मुझमें नहीं है। किन्तु उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं किसी भी स्थिति में यह कार्य करूं अतः मैंने इसे स्वीकार किया।

श्री रामचन्द्र जी महाराज मानव जाति के उन श्रेष्ठतम वर्तमान गुरुओं में से एक हैं (यदि उन्हें सर्वश्रेष्ठ कहने में कुछ संकोच हो) जो योग्य जिज्ञासु आत्माओं को अत्यन्त पुरातन काल के नितान्त गूढ़ योग मार्ग की शिक्षा दीक्षा उन्मुक्त रूप से प्रदान कर रहे हैं। उनके श्रेष्ठ सद्गुरु फतेहगढ़ निवासीसमर्थ गुरु श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें परमपद की ऋजु संप्राप्ति के मार्ग

की शिक्षा दी थी, और वास्तव में उन्हें पूर्ण योग की अत्यन्त उत्कृष्ट एवं अन्तिम स्थिति प्रदान की थी । इस योग का सबसे महत्वपूर्ण अंग ऐसे गुरु का सर्वोत्कृष्ठ कार्य है, जिसने वह उच्चतम स्थिति प्राप्त कर ली हो जिसे 'अनन्त', 'असीम' अथवा 'परमपद' की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह दुःख का विषय है कि दार्शनिक लोग 'असीम' की बात तो करते हैं किन्तु उसकी प्राप्ति के प्रयास से विचित्र बौद्धिक पलायनों द्वारा तुरन्त विरत हो जाते हैं, और वेदान्त श्रुति (Text) का उद्धरण देते हैं कि वहाँ से वाणी लौट आती है, मन लौट आता है, इन्द्रियाँ लौट आती हैं ('न वाक् गच्छति नो मनः' अथवा 'न तत्र सूर्यो भाति न शशाङ्कः' आदि)। अवर्णनीय होते हुए भी उसका साक्षात्कार उसी परमात्मतत्व की अनुकम्पा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह देवाधिदेव अपनी आकृति अपने द्वारा वरण किये हुए व्यक्ति को प्रदर्शित करता है ('तनुं स्वम् विवृणुत') । इस योग (राजयोग) के अभ्यास में प्राप्त होने वाले उन अनुभवों की प्रगति का अन्तर्दृष्टि-मूलक विवरण श्री रामचन्द्र जी महाराज ने दिया है, जो आत्मा को विभिन्न स्कन्धों में

उत्तरोत्तर उत्क्रमण करने पर प्राप्त होते हैं। परमतत्व की यह भूमिकाएँ अथवा स्कन्ध उसकी प्रत्येक विशेष किरण अथवा आत्मा के लिए सृजनात्मक अवतरण की प्रक्रिया द्वारा ही निर्मित हो गई है। और इस प्रक्रिया में आत्मा ने जिन अनेक अनुबन्धों अथवा ग्रन्थियों अथवा स्तरों का निर्माण किया उनमें से प्रत्येक के अपने विशिष्ट विधान और रूप विकसित हो गये, जो बन्धन और दुःख का कारण बने। जिस आत्मा ने इस प्रकार अपने अवतरण का निर्माण किया उसका पुनरावर्तन अर्थात् अतिक्रमण के लिए प्रयत्नशील होना अनिवार्य ही है। अवतरण के सोपानों (स्कन्धों) की चेतना विस्मृत हो जाने के कारण आत्मा के लिए यही मार्ग अवशिष्ट रह जाता है कि वह किसी ऐसे की खोज करे जिसे न केवल इन सोपानों का ही ज्ञान प्राप्त हो, अपितु जो स्वयं परमपद से आगे पहुँच चुके हों, और दूसरे को योगिक-प्राणाहुति (Transmission) द्वारा एक स्कन्ध से दूसरे स्कन्ध तक ले जा सके, क्योंकि किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में सदैव गम्भीर सन्देह बना रहेगा जिसने थोड़ी दूर तक उत्क्रमण तो किया हो, किन्तु अस्तित्व के किसी उच्चतर

अनुबन्ध (ग्रन्थि) में उलझ गया हो, जो उसे उच्चतर वृत्त अथवा चक्र में केवल घुमा रहा हो, भले हो वह वृत्त अथवा चक्र हमारी मानवीय स्थिति से कितना ही आगे हो। श्री रामचन्द्र जी की सूक्ष्म एवं सुस्पष्ट दृष्टि यह बतलाती है कि इन अनुबन्धों (ग्रन्थियों) के वास्तविक स्वरूप को समझ कर उनका अवशेष विलयन (Dissolution) एवं उसके उच्चतर प्रकार की सारूप्यता और सायुज्यता प्राप्त करके उन (ग्रन्थियों) का अविलम्ब अतिक्रमण किया जाना चाहिए। इन अनुबन्धों (ग्रन्थियों) अथवा अस्तित्व के वृत्तों के अतिक्रमण की विधि, और जिस आनन्द ने पहले अवतरण का निर्माण किया था और अब उत्क्रमण में सहायक हो रहा है, उसके विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों के वर्णन की मौलिकता सर्वथा नवीन पद्धति प्रस्तुत करती है, जिससे अब तक का दुष्प्राप्य योग साहित्य नितान्त अपरिचित रहा है। कई उपनिषदों में भूमिकाओं (सप्त-भूमिकाओं) एवं अनुबन्धों के वर्णन तो मिलते हैं, किन्तु उनके स्वरूप, अस्तित्व एवं ज्ञान की स्थिति की मनोवैज्ञानिक उपपत्ति कहीं नहीं पाई जाती। श्री रामचन्द्र जी ने तेरह ग्रन्थियों का

विवरण देकर उन पर अद्भुत प्रकाश डाला है। उनका उच्छेदन नहीं किन्तु उन्मूलन करके अतिक्रमण किया जाना चाहिए। वह सभी से आगे पहुँच कर अस्तित्व के ऐसे उच्चतर स्तर दिखलाते हैं, जो समस्त ज्ञान-भूमिकाओं का अतिक्रमण कर चुकने पर उन सर्वोत्कृष्ट सर्वातीत स्थितियों तक उत्पन्न होते हैं, जो केवल मानव के लिए प्रशस्त है। किन्तु उन स्तरों पर मनुष्य की आत्मा उन सबका अतिक्रमण कर जायेगी जिसके लिए 'मानवीय' विशेषण का प्रयोग हो सकता है, और अन्तिम अस्तित्व को प्राप्त हो जायेगी। जिन स्कन्धों तक ऐतिहासिक-महत्व-प्राप्त कुछ श्रेष्ठतम-शक्ति-सम्पन्न सन्त और ऋषि अपने जीवन में पहुँचे थे, उनका पर्यावलोकन ध्यान (Meditation) के द्वारा उपलब्ध समुचित ज्ञान के माध्यम से किया जा सकता है। और इस प्रकार अपने अन्तर में ही उस आनन्द का सत्यापन किया जा सकता है, जिसे इसकी प्रतीक्षा है कि कोई उसका अन्वेषण करके उसमें प्रविष्ट हो। इस पुस्तक में हम एक ऐसे सर्वोत्कृष्ट सद्गुरु की प्रामाणिक वाणी का पर्यावलोकन करते हैं, जिनका मानव के प्रति प्रेम उस सभी का अतिक्रमण

करता है जो किसी को ज्ञात है। आन्तरिक संघर्षों के इस युग में व्यक्ति को कल्याणोन्मुख किये बिना विश्व कल्याण के स्वर निनादित करना तो सरल है, किन्तु यह चिरन्तन सत्य है कि व्यक्ति की समस्या ही विश्व की समस्या है। वे लोग जो सर्व मुक्ति के पक्ष का समर्थन करते हैं कदाचित ही कभी स्वयं अपनी मुक्ति (स्वातंत्र्य अथवा उत्थान) की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं। किन्तु यह निर्भ्रान्त सत्य है कि व्यक्ति का उत्थान विश्व (समष्टि) के उत्थान की दिशा में पहला चरण है। सभी का साथ ही साथ उत्थान हो सके, और होना चाहिए। यह एक ऐसी अत्याशा है जिसकी सिद्धि की दैवी सम्भावना अत्यल्प है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यदि उसे उत्थान, रूपान्तर अथवा अति-मनोदशा की खोज है तो वह उसे इसी जीवन में प्राप्त कर सकता है। इतने पर भी सैद्धांतिक एवं भावुकतापूर्ण बौद्धिक प्रवंचना द्वारा प्रयत्न से विरत हो जाना अत्यन्त सरल है, (जिसका कारण ज्ञात अथवा अज्ञात हो सकता है)। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं कि परमतत्व की अनुभूतियों एवं जीवन की समस्याओं के समाधान की वास्तविक खोज

करने वालों के लिए यह पृष्ठ अत्यन्त उपयोगी और सहायक सिद्ध होंगे। वे इस प्रामाणिक वाणी की सहायता से वास्तविक गुरु को प्राप्त करेंगे, और उसकी सहायता से परमपद की खोज करेंगे। यह भी ठीक ही कहा गया है कि सच्चे गुरु को पाना कठिन है, और उपनिषद् के शब्दों में यह प्रत्युत्तर भी दिया जा सकता है कि एक सच्चे शिष्य को पाना भी उतना ही कठिन है। हमारा सौभाग्य है कि हमारे बीच सभी अर्थों में एक सच्चे गुरु विद्यमान हैं, जो सच्चे हृदय से यह चाहते हैं कि उनकी परीक्षा की जाये और उनका उपयोग किया जाये। ईश्वर करे कि भारतवर्ष में उनकी सहायता प्राप्त करने की योग्यता उत्पन्न हो, और ईश्वर करे मनुष्यों के बीच उनकी उपस्थिति से मानव जाति लाभान्वित हो सके!

हमारे बीच कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिनमें उच्चतर जीवन के लिए वास्तविक उत्कण्ठा है। साथ ही कितनी ही वाणियाँ, कितने ही सिद्धान्त और असंख्य आकांक्षायें भी विद्यमान हैं। यह सुस्पष्ट है कि आध्यात्मिक समाधान ही वास्तविक समाधान हो सकता है, और

जिसने सच्ची आध्यात्मिकता की खोज की हो, उसके अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति मानव जाति के पुनर्संगठन तो क्या पुनरुत्थान में भी सहायक नहीं हो सकता। अतः यह स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिकता के क्षेत्र में भी जो निम्न कोटि की वाणियाँ सुनाई पड़ती हैं, (जो आध्यात्मिकता के आभास से स्वर प्रस्तुत करती हैं), उदाहरणार्थ मानवतावाद एवं जीवकारूण्यवाद इत्यादि, वे आध्यात्मिकता की अभिव्यंजनामात्र ही हैं, किन्तु स्वयं आध्यात्मिकता नहीं हैं। हमें तो उस 'वास्तविक' वस्तु तक पहुँचना है, जो नितान्त अमिश्रित आध्यात्मिकता हो, क्योंकि वर्तमान युग पिछले किसी भी युग की अपेक्षा अधिक जटिलतापूर्ण है, जिसमें सारे संसार के मनुष्यों की समस्त अभिवृत्तियों में पूर्ण रूपान्तर की अपेक्षा है। सच्ची आध्यात्मिकता ही संसार में सच्ची एकता उत्पन्न कर सकती है। अन्य सभी अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्जातीय सहकारिता के उद्योग मानवता की समस्या के केन्द्र बिन्दु को कदापि स्पर्श नहीं कर पाते हैं। अतएव गम्भीर प्रकृति के मनुष्यों का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वास्तविक एवं अन्तिम वस्तु की खोज करें। कोई यह

न समझे कि हम मनुष्यों को आदि एवं मूल पदार्थ में बदल देना, और उन्हें सदा के लिए उसी में विलीन कर देना चाहते हैं। इसके ठीक विपरीत ऐसा प्रतीत होता है कि हमें सर्वमुक्ति (स्वातंत्र्य) कदापि नहीं प्राप्त हो सकती, जब तक कि हममें से प्रत्येक उस अन्तिम स्थिति के अनुभव और ज्ञान की पुनर्प्राप्ति न कर ले। (इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मुक्ति प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति में सृजन की किरण का अवसान हो जायेगा, क्योंकि ऐसी अवस्था में संसार दीनतर रह जायेगा, और ईश्वर लीला की किरण से रहित हो जायेगा)। अतएव श्री रामचन्द्र जी ने यह पुस्तक संसार को व्यक्ति की परिपूर्णता और साक्षात्करण की आतुरता के भाव से ही प्रेरित होकर प्रदान की है। ईश्वर करे कि वे युगों की अभिलाषा की परिपूर्णता को देखने के लिए प्रर्याप्त समय तक जीवित रहें!

के० सी० वरदाचारी

एम०ए०, पी०एच०डी०

रीडर, दर्शन विभाग

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

तिरुपति,

दक्षिण भारत

प्राक्कथन

इस छोटी सी पुस्तिका को लिखने का ध्येय केवल इतना ही है कि लोगों को यह ज्ञात हो जावे कि 'ज्ञान' क्या वस्तु है, और वे इस रहस्य से भी परिचित हो जावे कि किस-किस हालत पर ज्ञान की क्या-क्या दशाएँ होती हैं। इतना अवश्य है कि अपने यहाँ के धार्मिक ग्रन्थों में ज्ञान के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। किन्तु आजकल के लेखकों ने इस पुरानी वस्तु को अपने रंग में रंग कर जनता के समक्ष रख दिया।

इसका दायित्व अधिकांश उन लोगों पर है जो ग्राहक को गेहूँ दिखला कर जौ बेचते हैं। उन्होंने यह विचार नहीं किया कि इसका क्या परिणाम होगा और कितना ज़हर फैलेगा। अमृत के नाम से विष वमन किया गया, और वास्तव में आध्यात्मिकता का गला घोंटा गया। यह अवश्य है कि ऐसा करने वाले स्वयं तो किसी दीन के न रहे, किन्तु दूसरों को तो उन्होंने खराब

कर ही दिया। बड़े-बड़े व्याख्यान और ओजपूर्ण प्रवचन दिये जाते हैं, और ज्ञान की बातें बताई जाती हैं, और इसी योग्यता को आजकल महत्व दिया जाता है। जैसी जनता थी वैसे ही उसको नेता और प्रतिनिधि मिले। लोगों ने उनकी प्रशंसा करना आरम्भ कर दिया, और उन्होंने लोगों पर अपना सिक्का जमाना शुरू कर दिया। साधारण जनता ने भी यह समझ लिया कि यह महात्मा वास्तव में आध्यात्मिकता के मर्मज्ञ हैं और सम्मान के अधिकारी हैं। परिणाम यह हुआ कि उनको रोटियों की सुविधा हो गई, या यों कहिये कि उन्हें अपनी मेहनत की मजदूरी मिल गई, और वह भी ससम्मान।

अब यदि उनसे कोई पूछे कि जो कुछ आपने उपदेश दिया है वह आपका निजी अनुभव है या कि केवल दूसरों का, जो पुस्तकों से प्राप्त हुआ है। इसका उत्तर यही होगा कि अनुभव किसी का सही किन्तु ज्ञान यही है। और कुछ लोग तो इतना आगे बढ़ गये कि उनकी दृष्टि में केवल संसार को असार मान लेना, और उसकी नश्वरता एवं अनस्थायित्व का अनुमान कर लेना, अथवा ईश्वर को चिरन्तन और शाश्वत स्वीकार कर

लेना ही वास्तविक ज्ञान है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि उनके समक्ष आम की मिठास की व्याख्या की जावे तो वही बात पैदा हो गई जो कि आम खाने से होगी। क्या आम के स्वाद की व्याख्या सुनने मात्र से ही पेट भर सकता है ? क्या भूखे को यह समझाने से कि रोटियों से उसकी भूख दूर हो सकती है, वास्तव में उसकी भूख दूर हो जावेगी और फिर रोटी खाने की आवश्यकता न रहेगी ? मज़ा यह है कि वे समझते हैं कि बोलें हम खूब, और दिल में ख्याल भी है कि हम ज्ञानी हैं। यह तो वही लतीफा रहा कि किसी ने नाटक में राजा का अभिनय किया, और नाटक समाप्त होने के पश्चात् बाजार में अपने को राजा समझता हुआ फिरने लगा, तो क्या उसका वही सम्मान व प्रतिष्ठा हो सकती है जो कि एक सम्राट को साम्राज्य में प्राप्त है ? अपनी तरफ से कोई कुछ भी बन ले, किन्तु इस बनने से अस-लियत नहीं आती। और फिर चतुर मनुष्य यहभी समझ सकता है कि शेख साहब कितने पानी में हैं, और उनका आध्यात्मिक-अर्जन और पहुँच कितनी है। यह अवश्य है कि वह अपनी विद्वता की धमकी से दूसरों की ज़बान

बन्द करना चाहते हैं, परन्तु उनकी असलियत खुल ही जाती है। जिस कौम में ऐसे लोग पैदा हो जावें उस कौम का बस ईश्वर ही मालिक है।

असलियत से उन्हें कुछ वास्ता नहीं, बस पुस्तकों से ही उनका सम्बन्ध है। पथ पर स्वयं चलना तो वह जानते नहीं, बस दूसरों को रास्ता बताना जानते हैं। रहनी से उन्हें कुछ मतलब नहीं, और सहनी तो उनकी घुट्टी में ही नहीं, अर्थात् सहन-शीलता पर कदम जमाना उनके संत आचरण के विपरीत होगा। सेवा लेना तो वह अपना स्वत्व समझते हैं, और सेवा करना उनकी बुद्धि के लिये महत्वहीन है। जैसे कि ज्ञान का इन वस्तुओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं है, वह ज्ञान तो चंचल व्यक्तियों के लिए एक किताबी लहर है, और उनका कार्य केवल इतना है कि उस लहर का प्रवाह जनता की ओर मोड़ दें। बस यही उनकी महत्ता है। इससे उन्हें कोई मतलब नहीं कि ज्ञान की दशा कैसे उत्पन्न करें। ग्रन्थियों का भेद कैसे जानें? लय-अवस्था कैसे प्राप्त करें? ज्योतिर्मयी दशायें किस तरह खुलें? वहां की जानकारी कैसे प्राप्त करें? न उनको इनके साधन मालूम हैं, और न

वह किसी से पूछ कर अभ्यास ही करना चाहते हैं। और पूछें भी किससे, इसलिए कि अन्य लोग भी उन्हीं जैसे मिलते हैं।

गृहस्थों को वह बस पढ़ाना ही जानते हैं। उनसे कुछ सीखने का प्रश्न तो उनके हृदय में पैदा हो नहीं हो सकता, और न उनकी योग्यता का अनुमान ही उन्हें हो सकता है। यदि कहीं हो भी जावे तो गृहस्थ से कुछ पूछना या सीखना उनके मान और मर्यादा के विरुद्ध होगा। इसी अहंकार ने उनका तख्ता पलट दिया, केवल धज शेष रह गई। जब यह हाल हुआ तो उसी के अनु-रूप चीजें पैदा होने लगी। हर चीज़ भद्दी पड़ गई और भद्दा असर ही उनमें से निकलने लगा। योग की वास्तविकता लुप्त हो गई। ज्ञानी बनने के लिए रटना शुरू कर दिया, और इसी को पूर्ण समझ कर दूसरों को बताने लगे। वे वास्तविक तत्व से अपरिचित ही रहे। यहाँ तक कि असल की नकल भी न कर सके, बल्कि उसके विरुद्ध बातें ही विचार में आने लगीं और वे वही सिखाने लगे। यदि भक्ति की ओर झुक गये तो मान-वीय गुणों का चमत्कार दिखाने लगे, और कहीं ज्ञान पर

आ गये तो उनकी स्वेच्छाचारिता अपने नग्न रूप में सामने आ गई। उन्होंने अपने भीगे हुए दामन से वही निचोड़ा जिससे वह तर था। अर्थात् दूसरों को उनसे वही विकार प्राप्त हुए जो उनमें विद्यमान थे।

जन-साधारण ने उनके सरल नियमों को अपने हृदय में स्थान दिया, और उस दशा पर आ गये जो वस्तुतः अत्यन्त विकृत थी। हम उन्हीं साधनों का प्रयोग कर रहे हैं जो ज्ञान प्राप्ति के विरुद्ध हैं, किन्तु ज्ञानी होने का घमंड बाकी है। कोई कुछ कहे किन्तु उन्हें उसकी चिन्ता क्या? उनका प्रयोजन तो बस उसी से है कि जो कुछ वे कह रहे हैं। दूसरों को वे इतना अधिकार भी नहीं देते कि वे उन्हें ठीक बात बता दें, क्योंकि वे तो अपने आपको पूर्ण समझते हैं, इसलिए उन्हें ऐसा कहने का पूर्ण अधिकार भी है। नियति (नेचर) कहाँ ले जाना चाहती है इसकी उन्हें खबर नहीं। इसलिए कि वहाँ तक उनकी पहुँच नहीं। न वह यह जानते हैं कि उन्हें अब संभलना चाहिए।

जिन स्थितियों का वर्णन इस पुस्तक में हुआ है यदि कोई उनपर अधिकार प्राप्त कर ले तो वह वास्तव

में ज्ञानी कहलाने के योग्य है। जब उससे आगे बढ़ जाये, तो गुरू बनने का अधिकार है, और जब उससे भी आगे बढ़ जाये, जहाँ कोई बिरला ही पहुँच पाता है, तो उसके लिए उपयुक्त शब्द सद्गुरू ही हो सकता है। इसके पश्चात् कोई ऐसा रहस्य शेष नहीं रह जाता कि जिसका ज्ञान उसे न हो जावे।

मैने यह पुस्तक किसी पर आक्षेप करने के विचार से नहीं लिखी है, अपितु इसलिए कि इससे तथाकथित ज्ञानियों को अहंकार से छुटकारा मिले, और असलियत में उनका ठहराव हो जावे, और ज़माना बदलने या अच्छा ज़माना लाने में वे सहायक हों। ईश्वर करे ऐसा ही हो! ज़माना तो सुधर कर ही रहेगा। किन्तु अच्छा तो यही होता कि उसमें ऐसे लोगो का भी कुछ हिस्सा हो जाता।

—रामचन्द्र

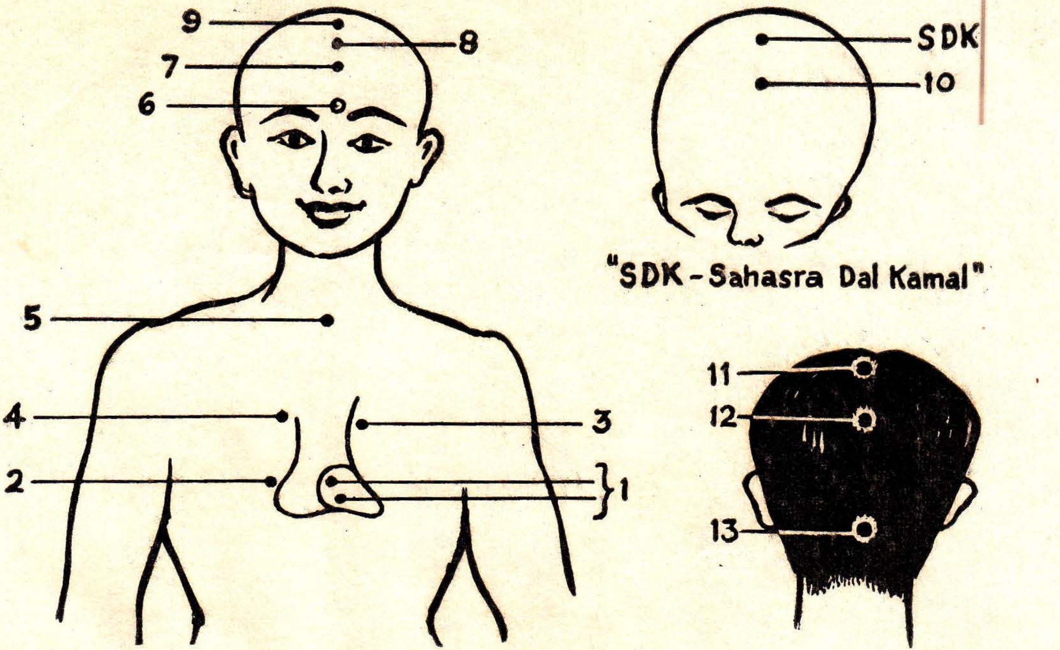

"SDK - Sahasra Dal Kamal"

ज्ञान

सृष्टि के निर्माण का जब समय आया, तैयारियाँ होने लगीं। धारायें प्रवाहित हो गईं। कम्पन उत्पन्न हो गया, गुत्थियाँ पड़ने लगीं। वेग उत्पन्न होने लगा। मन्थन-कार्य प्रारम्भ हो गया। क्रियायें-प्रतिक्रियायें होने लगीं और यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। यहाँ तक कि वस्तुयें व्यक्त होने लगीं। सृष्टि बनने लगी। जड़-चेतन समुदाय उत्पन्न होने लगे। धीरे-धीरे सब वस्तुएँ प्रकाश में आ गईं। संसार बन गया।

गतिशीलता प्रारम्भ हो गई और यह बराबर जारी रही। यहाँ तक कि गतिहीनता का विचार जो कि गति-शीलता के मूल में था, हिलोरें लेने लगा। यही दर्शन शास्त्र का आधार बन गया। मस्तिष्क की दौड़-धूप अब यहाँ से प्रारम्भ होती है। अपने से ऊपर वाली वस्तु की खोज बस यहाँ पर आरम्भ हुई, अर्थात् मजहब की नींव

पड़ गई। गतिशीलता तो हममें विद्यमान थी ही, अब हम अपने अनस्तित्व पर विचार करने लगे। जब अनस्तित्व के विषय में हम सोचने लगे, तब हममें उससे पहले वाली वस्तु अर्थात् गतिहीनता की समझ आई। इस तरह गतिशीलता ने हमें उससे पहले वाली दशा अर्थात् गतिहीनता की खबर दी और गतिहीनता ने ही हमें गतिशीलता का अर्थ समझाया। अर्थात् अब दोनों एक दूसरे की विरोधी वस्तुएँ हमारी समझ में आई। जब गतिशीलता की पहली स्थिति हमारे विचार में आई तो यह मानो गतिहीनता की पहले ही स्थिति थी।

अब गतिशीलता के आनन्द से हम परिचित हो चुके थे, और उसका आस्वादन यहाँ तक प्राप्त कर चुके थे कि अब हममें शान्ति की खोज का विचार स्वयं ही उत्पन्न हो गया। जब हमने गतिहीनता की खोज प्रारंभ की तो मानो हमारी दृष्टि शान्ति पर स्थिर हो गई, अर्थात् हमें यह अनुमान हो गया कि यह कोई आनन्द प्रदान करने वाली वस्तु है। किन्तु इसकी समझ अब तक नहीं है कि वास्तव में यह शान्ति और आनन्द है

क्या ? और इसका स्वाद क्या है ? अनुभव ने जानकारी को बढ़ा दिया। हम जान गये कि यह कोई वस्तु है, किन्तु उसका रसास्वादन अभी प्राप्त नहीं हुआ। यह ज्ञान[1] की प्रारम्भिक अवस्था है। सांसारिक मनुष्य इस

---

१. **ज्ञान**—सामान्य अर्थ में इस शब्द का अर्थ जानकारी है जो कई प्रकार की हो सकती है, यथाःभौतिक, मानसिक, द्रव्यात्त अथवा आध्यात्मिक। आध्यात्मिक अर्थ में यह शब्द इतनी अस्पष्टता से प्रयोग किया जाता है कि अक्सर इसका वास्तविक महत्व समझना असम्भव हो जाता है। इसका विस्तार निम्नस्तरीय सामान्य जानकारी से लेकर आन्तरिक प्रकाशन के स्तर तक है। इससे बहुत अधिक भ्रम और गलतफहमी पैदा होती है। एक मनुष्य जिसने कुछ आप्तग्रंथों का अध्ययन कर लिया अथवा अन्य जो पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर वाद-विवाद कर सकता है अथवा वह जो हर क्षण "अहं ब्रह्मास्मि" जैसे पीटे पिटाए पद समुदायों का उच्चारण करता है ज्ञानी कहलाने का दावा करने लगता है और जन समुदाय उसे इस रूप में स्वीकार भी कर लेता है चाहे उसकी आन्तरिक अवस्था जो भी हो। वास्तविक अर्थ में ज्ञान का तात्पर्य मन की उस आन्तरिक अवस्था से है जिसका विकास अभ्यासी के अपने प्रयास के विभिन्न ग्रन्थियों पर विभिन्न आध्यात्मिक स्थितियों से गुजरने में होता है। ज्ञान वास्तव में विभिन्न ग्रन्थियों पर व्याप्त अवस्थाओं की अनुभूति है। चूँकि ग्रन्थियाँ असंख्य हैं अतः ज्ञान भी अभ्यासी की पहुँच के स्तर के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। इस प्रकार एक व्यक्ति को बिना उसके पहुँच का स्तर अथवा ज्ञानाभूति की सीमा जाने ज्ञानी कहना निरर्थक है। इस छोटी सी पुस्तक में वर्णित विषयों द्वारा पाठकों के लिए इसी तथ्य को उजागर करना अभिप्रेत है।

समझ को ज्ञान कहेंगे। इसका अर्थ यह है कि हम यह जानते हैं कि शान्ति की अवस्था का भी अस्तित्व है। सामान्यतः सांसारिक मनुष्यों की यही स्थिति है। इतनी बात समझ में आ गई बस ज्ञानियों की सूची में नाम लिख गया। सांसारिक मनुष्यों की दृष्टि में ज्ञान का यही महत्व है।

अब यह चीज क्यों आई? जड़ और चैतन्य की ग्रन्थि ही इसका मूल है। जहर और जहर मोहरा अधिकतर पास ही पास मिलते हैं। जब हम जड़ता में थे, चेतनता का विचार आना आवश्यक था। कारण यह है कि जड़ता का आधार भी चेतनता ही है, और यह मिली जुली दशा है। अब पहला विचार हमें यह आया था कि हम चेतनता में प्रवेश करें। अर्थात् हमें चेतनता में जाने की पहली सूचना मिली थी। नियम यह है कि हमारी दृष्टि अत्यन्त ऊँची या अत्यधिक नीची चीज पर काम नहीं करती, और न वह समझ में ही आती है। चूंकि मनुष्य में स्वयं बीच की दशा विद्यमान है, अतः वह सम-अवस्था का अधिकारी बना। वह बीच की वस्तु हमारे अन्दर क्या हो सकती है? वह 'हृदय' ही हो

सकता है, और जड़ और चेतन की ग्रन्थि का स्पष्ट रूप से यहीं पर अनुभव होता है। इसलिए हृदय पर ध्यान करना अत्यन्त लाभदायक है। या तो हमको स्वयं इस बात का ध्यान आया, या घटनाओं ने हमें चेतनता की तरफ जाने के लिए विवश किया। खैर, कुछ भी सही, चेतनता की ओर हम झुके। जब तक चेतनता का हमको भान रहा तब तक सांसारिकता का विचार है, और इसी को कठ-वैद्यों ने ज्ञान कह लिया।

❀❀❀❀

ग्रन्थियाँ

ज्ञान की अवस्था वास्तव में वह है जब हम इस चेतनता के साथ घुलमिल जावें, और उसका प्रभाव अपने में लेकर उसमें अपनी लय-अवस्था स्थापित कर लें। जब हमने यह दशा पैदा कर ली, और इस अवस्था में लय हो गये, तो वास्तव में हमें उस ग्रन्थि के चारों ओर का ज्ञान प्राप्त हो गया और हम उस सीमा तक ज्ञानी बन गये। हमने जब इसमें लय-अवस्था प्राप्त कर ली और उसका आनन्द लेकर हृदय आगे जाने के लिए मचलने लगा, अर्थात् जो ज्ञान का सम्बन्ध हममें उत्पन्न हो चुका था, उसने हमें ऊँची हालत पर ले जाने को विवश किया। साहस बढ़ा और आगे बढ़ने की खुशखबरी मिली, और वह वास्तविक जीवन

पहली ग्रन्थि

जो प्रत्येक लय-अवस्था[1] के बाद आता है, हममें उपस्थित हो गया।

इसने हमें और भी सहायता दी। हम और आगे बढ़े। दूसरी ग्रन्थि आ गई। अब तबियत में उलझन अवश्य है, और साथ ही यदि लगन भी अच्छी है और हम उसमें परिश्रम पूर्वक लगे हुए हैं तो आगामी दशा,

---

१. **लयावस्था**—विलीनीकरण दशा

अभ्यासी द्वारा किसी निश्चित बिन्दु या ग्रन्थि पर पहुँचने पर उस बिन्दु या ग्रन्थि में स्थिरत्व की दशा को वास्तव में बिलीनीकरण कहते हैं। जब पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् एक अभ्यासी किसी बिन्दु या ग्रन्थि में प्रवेश पाने में सक्षम हो जाता है तो वह कुछ समय तक इसके अन्दर के स्थानों पर भ्रमण करता है ताकि इसका पूर्ण अनुभव उसे हो जावे। इस प्रक्रिया से वह उस स्थान पर फैली दशा को आत्मसात करने लगता है। जब वह इससे संप्रक्त हो जाता है तो उसका विलीनीकरण प्रारम्भ हो जाता है। इसे लयावस्था कहते हैं। परन्तु अब तक जिस दशा को हम प्राप्त हो गए रहते हैं उसकी चेतना अभी विद्यमान रहती है और जब तक यह है विलीनीकरण अवस्था को पूर्ण रूपेण परिपक्व नहीं कहा जा सकता। इसके लिए हमें आगे बढ़ना है ताकि स्थिरत्व की दशा जिसे सारूप्यता कहते हैं, प्राप्त हो जाय। फिर यह भी अन्तिम अवस्था नहीं है जब तक कि यह और अधिक परिष्कृत दशा-सायुज्गता में नहीं विकसित हो जाती जहाँ पर विलीनीकरण एवं सारूप्यता की दशा की धारणायें भी समाप्त हो जाती हैं।

जो पूर्व दशा से श्रेष्ठ है, अवश्य आ जाती है। यद्यपि हमें जाना कहीं भी नहीं है, हर वस्तु निकट ही है, परन्तु पहुँचना अपनी अन्तिम दशा पर अवश्य है। यदि कोई योग्य गुरु मिल गया और उसने इस विष को खींच लिया तो बस विष की औषधि तिरियाक—ही शेष रह गई। अपने प्रयत्न से लोग पहुँचते अवश्य हैं और बहुत दूर तक, किन्तु बहुत समय में। अतः इस घुमाव के भँवर में फँस जाने का भय सदैव बना रहता है। इसी प्रकार अगणित ग्रन्थियाँ हैं और प्रत्येक ग्रन्थि पर वही फना लय अवस्था—और वका सारूप्यता—की दशायें आती जाती हैं।

अब मैं थोड़ा-सा प्रकाश इस प्रथम उप-ग्रन्थि के बाद जो चेतनता है उस पर डालता हूँ। जब हम उस ग्रन्थि को पार कर के इस चेतनता पर आते हैं तो दुनियाँ थोड़ी बदल अवश्य जाती है। यदि हम उसमें लय-अवस्था प्राप्त कर लें तो ईश्वरीय-दशा का प्रारम्भ हो जाता है, और इसमें सारूप्यता प्राप्त हो जाने पर हमें हर जगह यही प्रतीत होता है कि एक विचित्र दशा समस्त जड़-चेतन समुदाय पर छाई हुई है, और उसमें ईश्वरीय-दशा

का आभास होता है, और ऐसी मस्ती पैदा होती है कि शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। यहाँ पर यदि किसी को योग्य गुरु न मिला तो लोग बहुधा इसी प्रथम अवस्था पर ही अवधूत[2] हो जाते हैं, और अपनी दौड़-

---

२. **अवधूत**—अवधूत एक ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो एक विचित्र प्रकार के पागलपन से दुष्प्रभावित हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसकी बातें अक्सर अनर्गल होती हैं, उसके कार्य निरर्थक और अद्भुत और उसका सामान्य व्यवहार स्वेच्छाचारिता का होता है। देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने ही विचारों द्वारा विस्मय में पड़ गया है जो अधिकतर एक ही दिशा में प्रवृत होते हैं। कभी-कभी इस प्रकार की अवस्था एक अभ्यासी को भी जब वह किसी ग्रन्थि पर एक विशेष अवस्था से गुजरता है तो प्राप्त होती है। तांत्रिक प्रयासों में यह अधिकता से पाया जाता है। आध्यात्मिक प्रयासों में भी जब एक अभ्यासी एक बिन्दु के अत्याकर्षक अवस्था से गुजरता है तो कभी-कभी इस प्रकार की दशा पैदा हो जाती है। परन्तु वह तभी होती है जब गुरु में स्थिति की समझने की क्षमता का अभाव होता है अथवा वह अपनी शक्ति और क्षमता से उसका निग्रह करने में अक्षम होता है। इस अवस्था में अभ्यासी आगे बढ़ना नहीं अनुभव करता है और इसके आकर्षक प्रभाव में पड़कर स्थाई रूप से इसमें स्थित हो जाता है जिसका फल यह होता है कि उसकी आगे की प्रगति सदा-सदा के लिए रुक जाती है। यह वास्तव में एक योग्य गुरु के सर्वप्रथम कर्त्तव्यों में है कि वह स्थिति के प्रति जागरूक रहे और अभ्यासी को इसमें भटकने से बचावे। हमारी संस्था में इस विषम परिस्थिति को दूर कर दिया जाता है

धूप समाप्त कर देते हैं। जीवन भर यहीं पर अटके रह जाते हैं। अब आप उन लोगों से पूछें, जो कि धुरन्धर ज्ञानी होने का दावा करते हैं कि कभी उनकी यह दशा भो प्राप्त हुई, जो कि वास्तव में ज्ञान के प्रथम अध्याय का प्रारम्भ है। यदि इसी दशा का ध्यान बांधा जाय तो कृत्रिमता उत्पन्न हो जाती है, वास्तविकता नहीं रहती।

अब हम उसके बाद की एक अन्य उप-ग्रन्थि पर पहुँचे। इसके चारों तरफ वाली हालत, ज्ञान की दूसरी अवस्था है। यदि प्रेम और भक्ति ने आपको वहाँ तक पहुँचा दिया तो ज्योतिर्मयी दिव्य-दशाओं का भी रूप बदल जाता है। अर्थात् वह चीज हल्की पड़ जाती है और दशा उससे श्रेष्ठतर हो जाती है। मतलब यह कि पहले वाली दशा भारी थी और यह उससे हल्की हो जाती है। अब इस ग्रन्थि पर क्या है? वह दशा अथवा वह दिव्य प्रकाश यह है कि चारों ओर प्रत्येक वस्तु में ईश्वरीय-दशा के छाये रहने की अनुभूति होती है। इस

और अभ्यासी द्वारा ऐसे बिन्दुओं को गुरु की असाधारण शक्ति द्वारा छलांग करा दिया जाता है जिसका उसको मान भी नहीं हो पाता।

दशा में कुछ सरलता का आभास होता है। इसका अर्थ यह है कि हम उसके अन्दर और भी प्रवेश कर गये। प्रत्येक स्तर पर लय-अवस्था और सारूप्यता आती है। सारूप्यता उस दशा की प्राप्ति है, जिसको दूसरी अवस्था का ज्ञान कहते हैं। अब हमने इसमें लय-अवस्था प्राप्त कर ली। सारूप्यता की खुशखबरी मिली और जब सारूप्यता में हम काफी रम गये, तब दूसरी ग्रन्थि की ओर दृष्टि पहुँची।

दूसरी ग्रन्थि

अब यदि हमारे प्रेम ने जोर मारा तो हम उसमें भी घुस पड़े। यह बात स्पष्ट रहना चाहिए कि प्रत्येक ग्रन्थि में घुसने के समय चित्त में कुछ बोझ या भारीपन सा प्रतीत होता है, और बहुधा लोग यह देखकर अभ्यास छोड़ बैठते हैं। किन्तु यदि यह विचार पैदा हो जाये कि बीमारी के बाद स्वास्थ्य प्राप्त होता है, तो हर ग्रन्थि को पार करने का साहस उत्पन्न हो जाता है। अब दिव्य-दशाओं का रूप बदल गया। तलछट से छुटकारा मिला। वास्तविकता की स्पष्टतर अवस्था का भान हुआ। हल्कापन और भी बढ़ गया,

इतना कि सरलता ही सरलता प्रतीत होने लगी। किन्तु निर्मलता अभी दूर है। यह बात दूसरी ग्रन्थि के बाद की है। वहाँ पर आत्मा की कुछ झलक प्रतीत होती है। इस स्थान को लोग आत्मा का स्थान कह लेते हैं, क्योंकि इस स्थान पर ऐसी ही दिव्य दशाओं की अनुभूति होती है। स्वच्छता और सरलता इस अवस्था की जान है। बहुधा समासम दशा प्रतीत होती है। यह उपर्युक्त ग्रन्थि आत्मा का स्थान है। ऐसी ही अगणित ग्रन्थियाँ लगातार चली गई हैं, जिनका वर्णन व्यर्थ है, क्योंकि इनके बीच का अन्तर इतना कम है कि शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि अब आत्मा के स्थान की दिव्य-दशाएँ हमारे समक्ष खुल रही हैं। हमें इस स्थान की हैसियत का ज्ञान हो जाता है, और हम उस पर मनन करके लय हो जाते हैं। अब यह पहला आवरण हटता है, अर्थात् हमको आत्मा की महक आने लगती है, और वैसा ही दृश्य अन्दर और बाहर नजर आने लगता है। यदि यह चीज उत्पन्न न हो तो उसको ज्ञान की दशा कदापि नहीं कह सकते। यदि इसका ध्यान बाँधकर यह बात प्राप्त की जाती है, तो वह कृत्रिम

होती है, और अपनी विचार शक्ति पर जोर देने के कारण अन्दर ही अन्दर उसके चमत्कारों का अनुभव होने लगता है, जो स्वयं ही एक बन्धन बन जाता है, और जाल में इस प्रकार जकड़ देता है कि उससे छुटकारा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अभ्यासी तो वही है जो आरम्भ से अन्त तक वही अभ्यास करता रहे, जो वास्तव में करना उचित है।

खैर, अब हम दूसरी ग्रन्थि पर हैं। इस ग्रन्थि से मेरा अभिप्राय आत्मा के कुल स्थान से है, जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ कि इसमें अगणित ग्रन्थियाँ हैं, जिनको पार करने के पश्चात् हम इस क्षेत्र से बाहर होते हैं। मनुष्य में यह वस्तुयें पर्त दर पर्त बन गई है। खैर, अब हम इसके आगे पहुँचने का उपक्रम करते हैं। ईश्वर हमारी सहायता करता है, और आगे की खुशखबरी प्राप्त होती है। अब यहाँ तक तो हमको ज्ञान हो ही चुका, अर्थात् हम इन दिव्य अथवा ज्योतिर्मयी दशाओं के वृत्त में प्रवेश कर गये। अब इसके ऊपर की ग्रन्थि आती है।

सृष्टि-रचना में हर वस्तु की आवश्यकता होती है और हर तत्व इसका साक्षी है। अब हम इससे आगे वाली दशा पर पहुँचते हैं तो

तीसरी ग्रन्थि

वहाँ पर एक भभूका के रूप में वही दिव्य प्रकाश का समूह दृष्टिगत होने लगता है। किन्तु भक्त इस गर्मी को सच्चे प्रेम की गर्मी से सम्बन्धित कर लेता है। इतनी बात और बताए देता हूँ कि जब धारायें प्रवाहित हुईं तो उनका केन्द्र ठंडा था, इसलिए कि उसमें पदार्थ (matter) सम्मिलित नहीं था और उनके उतरते ही उनसे झटके प्रारम्भ हो गए, और यह बढ़ते ही गये। यह अधिकतर वहाँ पर हुए जहाँ से वास्तव में सृष्टि का प्रारम्भ हुआ था। इसको समझने के लिए यदि हम तीन भाग कर लें तो बात और भी स्पष्ट हो जावेगी। जब ठंडक घुसती हुई उस सीमा में आई, जहाँ पर उसने बहुत कुछ अपनी ही क्रिया से गर्मी पैदा कर ली थी, तो वहीं से उस वस्तु ने व्यक्त-रूप धारण कर लिया। यह मध्य का भाग था। इसी भाँति अब वही मध्य का भाग एक ग्रन्थि के रूप में हमारे सामने आ जाता है, और उसमें हमें घूमे हुए

चक्र से मालूम पड़ते हैं। भाई सच पूछो तो वही मूल-तत्व स्वयं एक ग्रन्थि बन गया, और क्रिया-प्रतिक्रिया की अधिकता के कारण इतना ठस पड़ गया कि अब लगभग उसने पदार्थ का रूप धारण कर लिया। (मैं केवल बड़ी-बड़ी ग्रन्थियों का ही वर्णन कर रहा हूँ।) अब इस ग्रन्थि में हम अपने विचार द्वारा समाये हुए हैं, और इसी ध्यान द्वारा इसमें भ्रमण कर रहे हैं जिससे कि हम इससे आगे वाली दशा पर पहुँच जावें। जब हमें अपनी दृढ़-लगन द्वारा सफलता प्राप्त हुई तो हम इस ग्रन्थि की वास्तविक दशा पर आ गये। यहाँ का प्रकाश कुछ अग्नि-तत्व से सम्बन्धित था। यदि मनुष्य इस ग्रन्थि में लय-अवस्था प्राप्त कर ले तो अग्नि-तत्व पर अधिकार हो जाता है। जब इस ग्रन्थि से बाहर निकल जाते हैं तब हम इसकी वास्तविकता पर पहुँचते हैं, जो हमारी उन्नति के लिए सीढ़ी का काम देती है, और उस स्थान की दशा का बोध करा देती है। हम जब इसमें अपनी लय-अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तो उस स्थान के ज्ञान की दशा हमारे अन्दर उत्पन्न हो जाती है। अब यह वस्तु हमारी हो गई, और इस पर हमारा प्रभुत्व हो गया।

अब हम इस सीमा तक ज्ञानी बन चुके हैं। उसकी विशिष्टता हमको ज्ञात हो गई, और हम उसमें लय भी हो चुके। वास्तव में ज्ञानी की क्या दशा होती है और यह चीज क्या है? उस स्थान की लय-अवस्था के पश्चात् जो सारूप्यता की दशा आती है वही वास्तव में उस स्थान का ज्ञान है। इस दशा में हम होश में आ जाते हैं, इसलिए इसको उस स्थान की 'सारूप्यता-जिन्दगी' कह देते हैं, जिसका अर्थ जीवन है, और जीवित वस्तु ही उसका अनुभव कर सकती है। अब हमारा साहस और बढ़ा और इससे आगे का ज्ञान प्राप्त करने की तड़प जागृत हुई।

चौथी ग्रन्थि

अब हमने इससे भी ऊपर वाली ग्रन्थि में प्रवेश किया। अग्नि की हैसियत का अभाव हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि अब उसकी विपरीत दशा में प्रवेश कर रहे हैं, जो जल का स्थान है। केवल इसी ग्रन्थि पर यदि हम लय-अवस्था प्राप्त करके रह जाते हैं तो काफी घूमने के पश्चात् भी केवल उसी तत्व पर हमारा अधिकार हो पाता है। ज्ञान हमें क्या सहायता

देता है ? यह कि हममें ईश्वर की तलाश और खोज पैदा कर देता है। यह बात यदि किसी के विचार में नहीं है या वास्तविकता की खोज हम नहीं चाहते तो केवल इसी ग्रन्थि पर अटक कर रह जाते हैं, और चमत्कार दिखाना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि हमारी तड़प ने साथ दिया और इस ग्रन्थि में लय होने के पश्चात् सारूप्यता की दशा पैदा हो गई तो हमको उस दशा का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि हमारा ध्येय वास्तविकता पर हो स्थित है इसलिए उस ग्रन्थि पर अधिकार होते हुए भी हमारी दृष्टि इससे काम लेने की ओर नहीं जाती। इसका गुण इतना शान्तिमय है कि जैसे जल को देख कर ताजगी का अनुभव होता है। जब इस ग्रन्थि में लय अवस्था प्राप्त करके सारूप्यता की दशा पर आ जाते हैं तो हमें उस हालत का ज्ञान हो जाता है।

एक बात लिखने से रह गई जो हर ग्रन्थि के बाद पैदा होती है। जब किसी ग्रन्थि में लय-अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् हम सारूप्यता की दशा में पहुँचते हैं तो वह दशा ही उसका अन्त नहीं होती, बल्कि सारूप्यता भी लय होकर उससे उत्तम सारूप्यता की दशा में आ

जाती है, जिसको सायुज्यता कहते हैं। तब उस दशा का ज्ञान पूर्ण हुआ समझना चाहिए। अच्छा यह सायुज्यता भी हममें उत्पन्न हो गई। अब इससे आगे वाले ज्ञान की हमें खोज है।

खोज और तड़प में बहुत अन्तर है, इसलिए 'तड़प' शब्द का प्रयोग अधिक उचित है। अब यह तड़प हमें पाँचवीं ग्रन्थि पर पहुँचाती है और वह हालत पैदा कर देती है जो इन चारों ग्रन्थियों में सबसे उत्तम है। अब हम उस ग्रन्थि पर पहुँच गये और उसमें सैर या भ्रमण करने की हालत पैदा हो गई, और वहाँ की बातें भी हमारे अनुभव में आने लगीं। हमने अपना आसन वहाँ पर जमा दिया। अतः हमारे ध्यान का वैसा रूप भी पैदा हो गया, और यह चलता रहा। अन्त में वह समय आ गया कि उसकी सैर की हालत में हमने लय-अवस्था की दशा पैदा कर ली। तब हमको उसकी लय-अवस्था में जाने का सुअवसर मिला। यहाँ की दशा कुछ विचित्र है।

पाँचवी ग्रन्थि

इस अवस्था में वायु के तत्व पर हमें अधिकार हो जाता है। मगर वह वायु बदली हुई होती है। उसमें झोंके नहीं होते अपितु कुछ वस्तु अधिक ताजगी देने वाली होती है। यहाँ पर अभ्यासी की दो दशाएँ पैदा होती हैं। कभी ज्ञान-अवस्था से वास्तविक ज्ञान-अवस्था में जाने पर कुछ दुःख सा प्रतीत होता है, और आँसू निकल पड़ते हैं, और कभी वहाँ की वायु वर्तमान दशा का अनुभव प्रदान करके एक प्रकार की प्रसन्नता पैदा कर देती है, जो कभी-कभी रोने और हँसने के रूप में व्यक्त हो जाती है। हमारे यहाँ अभ्यासी को इस अवस्था पर अधिक रोका नहीं जाता, बल्कि मालिक अपनी इच्छा-शक्ति और आत्मिक बल से उस अवस्था की वास्तविक सारूप्यता की दशा उत्पन्न करके उसे आगे ले जाते हैं। अच्छा, वह समय भी आ गया जब हम इसमें सारूप्यता की पूर्ण अवस्था प्राप्त करके आगे बढ़े। पिंड का ज्ञान अब हमें हो गया।

हर ग्रन्थि पर ध्वनि है, और जितनी ऊँची अवस्था की ग्रन्थि है उतनी ही ध्वनि मधुर होती जाती है। पिंड में यह ध्वनि तीव्र होती है। यदि कोई मनुष्य

केवल इन ध्वनियों पर अथवा उनके चढ़ाव-उतार पर ध्यान देता है तो उस जगह के चमत्कार और सिद्धियाँ उस मनुष्य में आ जाती है। पांचों ग्रन्थियों में ध्वनि कुछ मिलती जुलती हैं, परन्तु ये भिन्न प्रकार की हैं। इसको पंच-अग्नि विद्या[३] कहते हैं, जो रावण को पूर्णतयः सिद्ध थी। परन्तु भाई, मैं किसी को राक्षस तो बनाना नहीं चाहता, और न चमत्कारों की ही ओर ले जाना चाहता हूँ। इसलिए इस चीज़ को नहीं खोलता। जो उस पर जाना चाहे स्वयं प्रयत्न करे। उन जगहों पर का स्पन्दन ऐसा ही है जो ध्वनि का अनुभव प्रदान करता है। दशा के अनुसार ध्वनि तीव्र और मन्द अवश्य होती जाती है।

---

३. **पंचाग्नि विद्या**—पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश—ये पाँचों तत्व पिंड देश की पाँच बिन्दुओं से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। ये बिन्दु मनुष्य शरीर में छाती के क्षेत्र में स्थित हैं। इन बिन्दुओं पर स्वामित्व का अर्थ है उनसे सम्बन्धित शक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण। सभी द्रव्यात्मक शक्तियाँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन तत्वों की शक्तियों से सम्बन्धित रहती हैं। इस प्रकार एक योगी जिसे इन पाँच बिन्दुओं पर स्वामित्व प्राप्त हो चुका रहता है इन तत्वों पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है और उनकी शक्तियों को हर उचित कार्य के लिए प्रयोग कर सकता है।

अब हम ब्रह्मांड की ओर अग्रसर होते हैं। हमारी दौड़ अब छठी ग्रन्थि पर पहुँच गई, जहाँ से ब्रह्मांड का प्रारम्भ होता है। एक बात

छठी ग्रन्थि

मैं और लिखे देता हूँ कि पिंड की इस दशा पर पहुँचे हुये अभ्यासी का जन्म, यदि उसने ब्रह्मांड के क्षेत्र में पैर रख दिया हो, इस संसार में नहीं होता। इस ज्ञान से बस इतना ही लाभ है। छठी ग्रन्थि पर आते ही दिव्य-प्रकाश का रूप परिवर्तित हो जाता है, और उसमें पदार्थ का प्रभाव कम हो जाता है। अब एक बात यह भी है कि या तो हम छठी ग्रन्थि पर रुक कर पहले वाले सिद्धान्त से आगे बढ़ें या यदि कोई अच्छा गुरु मिल गया हो तो वह इस छठी ग्रन्थि पर अधिक नहीं रोकता। वहाँ की दशा पैदा करा के सातवीं ग्रन्थि में अभ्यासी को प्रवेश करवा देता है। और जो अपने आप चलते हैं वह इस छठी ग्रन्थि पर भी लय व सारूप्यता स्वयं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वहाँ के चमत्कार और प्रकाश इतने आकर्षक हैं कि अभ्यासी का मन ऊपर की सातवीं ग्रन्थि पर जाने को नहीं चाहता।

इस छठी ग्रन्थि पर काफी प्रकाश है और कुछ धुंधलापन भी अनुभव होता है। मगर हम जब छठी ग्रन्थि की सारूप्यता की दशा पैदा कर लेते हैं तो धुंधलेपन का आभास समाप्त हो जाता है। प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। यह वह स्थान है जो वास्तव में शक्ति का वितरण करने वाला है, और जो ऊपर से आई हुई शक्ति पिंड में पहुँचाता है।

सातवीं ग्रन्थि

अब हमें सातवीं ग्रन्थि पर चलना है, और यह जगह बिल्कुल ब्रह्मांड देश में है जिसको विराट-देश भी कहते हैं। इस जगह का क्या कहना। ईश्वर सब को प्राप्त कराये, ताकि आगे पहुँचने की खुश-खबरी मिलती जावे। यहाँ पर पवित्रता का अनुभव बहुत होता है, तथापि पदार्थ का प्रभाव अवश्य है। अणु की शक्ति जो महाभारत में प्रयुक्त हुई थी यहाँ पर बहुत अधिक है। योगी को इस दशा पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लेना उचित है। भारतवर्ष के योगियों ने इस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों में कदाचित ही कोई बचा हो जिसमें

इस स्थान की शक्ति न हो। यहाँ पर बिजली की ताकत का एहसास अधिक होता है। बहुधा लोग इसी पर अटक कर कर रह जाते हैं, क्योंकि यह चीज उनकी बहुत प्रिय हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि आगे जाने से रुक जाते हैं। यह हालत प्रशंसा के योग्य अवश्य है, किन्तु योग के संदर्भ में तो यह बच्चों का खिलौना मात्र है। दुर्वासा ऋषि में इस स्थान की शक्ति अधिक बढ़ गई थी और इनका लगाव व सम्बन्ध उस केन्द्र से पैदा हो गया था, जहाँ पर मस्तिष्क को परेशान करने की शक्ति अधिक है, अर्थात् रुलाने वाली रौद्र और दूसरों को हैरान करने वाली शक्ति की प्रधानता है। हमारे भारतवर्ष में ऋषियों की इतनी प्रतिष्ठा की जाती थी कि दुर्वासा ऋषि को रुद्र का अवतार मान लिया गया। इस बारे में अधिक लिखना नहीं चाहता कि इस कैफियत के पैदा हो जाने से आध्यात्मिक-क्षेत्र में दुर्वासा ऋषि की क्या स्थिति रह गई थी, और मानव-उद्देश्य की प्राप्ति में वे कहाँ तक सफल हुए थे।

हर चीज जो पिंड में वर्तमान है, उसमें शक्ति वहीं से आती है। वहाँ अगणित शक्तियाँ वर्तमान हैं। यहाँ

पर हर वस्तु बीज रूप में वर्तमान है। यदि हम इसका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो हमें प्रत्येक शक्ति की चेतना प्राप्त हो जाती है। इस ग्रन्थि में जब हम लय-अवस्था प्राप्त करने लगते हैं तो पग-पग पर असीम शक्ति का अनुभव होता है, और बिजली वाली तेजी हर जगह दृष्टिगोचर होती है। इस ग्रन्थि में अब अपना प्रसार बढ़ता जाता है, और यह अनुभव होता है कि समस्त संसार में हम फैले हुए हैं। इसलिए कि वहीं के प्रसार की अवस्था के प्रभाव से हम पिंड-देश में प्रसार प्राप्त करते हैं। योगी लोग यहाँ की शक्ति का प्रयोग प्रकृति के नियम को भी थोड़ी देर के लिए स्थगित करने के लिए कर सकते हैं। इस शक्ति का हम जिस प्रकार चाहें बड़े से बड़े कार्य में प्रयोग कर सकते हैं। यदि हम इसमें पूर्ण रूप से लय-अवस्था प्राप्त कर लें तो गोला-बारूद की शक्ति को यहाँ की शक्ति से क्षीण कर सकते हैं। इस संसार में होने वाली घटनायें सबसे पहले यहीं पर घटित होती हैं और हम इसको होने से पहिले पढ़ सकते हैं। यदि हमारा अनुभव तीव्र है तो हमें ब्रह्मांड देश के छोटे-छोटे केन्द्रों में वह विभिन्न शक्तियाँ मिलेंगी जो उन

बिन्दुओं से सम्बद्ध विभिन्न भू-भागों पर अपना-अपना प्रभाव प्रदर्शित करती है। यदि इन शक्तियों के विषय में वैज्ञानिक अनुसन्धान किये जायें, तो उन्हें अस्त्र-शस्त्रों में प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु इस श्रेणी तक अनुभव बढ़ा लेना पश्चिमी सभ्यता के हिमायती ही कर सकते हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण दैवी की अपेक्षा भौतिक अधिक होता है। पर योगी इस ओर ध्यान नहीं देते। इसलिए कि उनका ध्येय ईश्वर-प्राप्ति होता है, और वह उसकी शक्ति का, संसार में अच्छाई पैदा करने के लिए, प्रयोग करते हैं। वह स्थितियाँ निस्सन्देह इसके अपवाद हैं जहाँ पर नियति स्वयं संसार में विनाशकारी प्रयोग चाहती है और यह होता रहता है। यह इतना बड़ा क्षेत्र है कि यदि हजारों वर्ष सैर की जावे तो भी शायद काफी न हो। इसकी सैर उस समय सम्भव है जब कि पथ-प्रदर्शक ऐसा मिल जावे जो अपनी शक्ति से जल्दी सैर करवा दे। और हमें ऐसे गुरु की इसलिए आवश्यकता है कि हमको इन सब ग्रन्थियों को पार करके अपने ध्येय पर पहुँचना है। इसी क्षेत्र से उसे सर्वत्र वितरित करने के लिए प्रकाश मिलता है। चन्द्रमा, तारागण और

नक्षत्र—सभी को प्रकाश यहीं से मिलता है।

अब हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम अपने आपको इस ग्रन्थि में लय कर लें और इस रूप से हम इसमें घूम लें कि हमको कुछ अधिक ज्ञान हो जावे, इसलिए हम ऐसा ही करते हैं और लय होने के बाद उसकी सारूप्यता की दशा में जाने का प्रयत्न करते हैं। यह भी एक ऐसा बिन्दु है जहाँ कि लोग अवधूत हो जाते हैं और वहाँ की दशा इतनी मनोहर अथवा चित्ताकर्षक प्रतीत होती है कि आगे जाने को जी नहीं चाहता। मगर खैर, हम किसी प्रकार से लय-अवस्था प्राप्त करने के बाद उसकी सारूप्यता की दशा में प्रवेश कर जाते हैं तो दृश्य बदल जाता है, और हमको उस स्थान का ज्ञान हो जाता है। विशुद्धता रहती है परन्तु इसमें कुछ तीव्रता अवश्य होती है। इसलिए उसमें कुछ शक्ति भी अवश्य होती है। आजकल के ज्ञानियों से पूछा जावे कि वह किस पर्दे के ज्ञान तक पहुँचे हैं? यद्यपि सच तो यह है कि वास्तविक ज्ञान की दशा अब भी उनमें नहीं आई। खेद की बात यह है कि लोग अपने आपको ऐसे रूप में प्रस्तुत करते हैं जो वास्तव में उनकी दशा नहीं होती। या तो वह इस

वस्तु को गलत समझे हुये हैं या अपनी महत्ता दिखाने के लिए वैसा कहने लगते हैं। इसलिए कि आँखों वाले लोग बहुत कम मिलते हैं, और भाई, यदि कोई इन वस्तुओं का देखने वाला मिल भी गया तो उस पर विश्वास कौन करे ? वही लोग सब मिलजुल कर उसकी बात न मानने पर तैयार होंगे।

भाई, कितना अच्छा स्थान है ! इस ग्रन्थि की प्रशंसा क्या की जावे। यदि इसकी दशा विस्तारपूर्वक लिखी जावे तो विषय बहुत बड़ा हो जावेगा। कृष्णचक्र की प्रशंसा जो कुछ पुस्तकों में दी है उसमें यहीं की शक्ति वर्तमान थी। अब मैं इस ग्रन्थि में घुस कर कुछ बातें और बतलाता हूँ। अभ्यासी जब इसके रहस्य में आता है तो वहाँ पर उसे एक प्रकार की घूमती हुई चक्राकर वस्तु का अनुभव होता है जिसमें इतनी शक्ति है कि यदि उसको पूरे तौर से किसी बड़ी से बड़ी चीज पर लगा दिया जावे तो वह केवल हिल ही नहीं जावेगी बल्कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो जावेंगे। अभ्यासी जब इस दशा में आता है तो उसके (दशा के) अन्दर भी उसकी अन्य बहुत सी बातें मिलती हैं।

अब यह शक्ति कैसे पैदा हो गई ? विभिन्न ग्रहों के एक स्थान पर स्थित हो जाने से एक प्रकार की शक्ति पैदा हो जाती है जो कि उनको अपनी-अपनी जगहों पर स्थिर रखती है। इस ग्रन्थि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने पर यह शक्ति उत्पन्न हो जाती है। पूर्ण अधिकार प्राप्त करना और कुछ नहीं है बल्कि इसमें अपने आपको लय कर देना है—इस प्रकार कि स्वतः दवा की भाँति शरीर में घुल-मिल जावे। जब हमने इतना कर लिया तो उससे ऊपर भी एक चीज और मिलती है जिसको समझने के लिए मैं महाकाल[४]—चक्र कहता हूँ। यह वह चीज है जिसके प्रभाव से एक ऐसा क्षेत्र बन गया जिसके कारण तमाम नक्षत्र अपनी जगह पर स्थिर हैं। वह चीज कृष्ण चक्र से भी जोरदार या

---

४. **महाकाल-चक्र**—भगवान् श्री कृष्ण के सुदर्शन से हर व्यक्ति अच्छी तरह परिचित है। इसको एक चमकदार तश्तरी के रूप में दिखाया जाता है जिसे उंगलियों में घुमाकर लक्ष्य पर फेंका जा सकता था। इसी कारण इसे बहुधा श्री कृष्ण का अंगुली-चक्र भी कहा जाता है। यह सबसे शक्तिशाली शस्त्र था जिसका उपयोग भगवान् श्री कृष्ण ने संसार के ढाँचे में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए किया था। विराट क्षेत्र की पूरी शक्ति इसके अन्दर निहित थी। सुदर्शन चक्र वास्तव में भगवान् श्री कृष्ण के पास

शक्तिशाली है। समय पलटने के लिए यह अस्त्र सबसे अधिक प्रभावशाली है। जहाँ पर कि सातवीं ग्रन्थि समाप्त होने को होती है वहाँ पर इस चीज का प्रभाव वर्तमान है। इसकी बराबरी कृष्ण-चक्र भी नहीं कर सकता। और यदि लोग मुझे क्षमा करें तो मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ कि यह अस्त्र सम्भव है कि कृष्ण जी को भी न मिला हो, इसलिए कि उनको इसकी आवश्यकता न थी। परन्तु अब इसकी आवश्यकता है इसलिए सम्भव है कि नियति ने किसी को दे दिया हो।

एक आश्चर्यजनक बात और लिखता हूँ। सम्भव

किसी तश्तरी के रूप में कोई भौतिक यंत्र नहीं था बल्कि चक्कर काटती हुई एक सूक्ष्मशक्ति थी जिस पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। महाकाल-चक्र सुदर्शन चक्र से अधिक शक्तिशाली है। इसमें काल की शक्ति गुम्फित हैं (परिशिष्ठ १ देखें)। इसका अवतरण विरल परिस्थितियों में होता है जब इसका प्रयोग अत्यधिक महान् कार्यों के लिए आवश्यक हो जाता है। आज के दिन विश्व के जिस पुनर्जीवन का कार्य उस कार्य से जिसके लिए श्री कृष्ण जी पृथ्वी पर आए थे कहीं अधिक गुरुत्व का है। परिणाम-स्वरूप अब समय की मांग है कि परिवर्तन लाने के लिए और अधिक व्यापक पैमाने पर इस उत्कृष्ट शक्ति का प्रयोग किया जाय और जिसके लिए महान दैवी व्यक्तित्व पहले ही पृथ्वी पर आ चुका है और नियंत्रण में इस उत्कृष्ट-शक्ति की सहायता से इसके लिए तदर्थ कार्य कर रहा है।

है कि इससे कुछ लोगों को ठेस पहुँचे मगर सत्य बात प्रगट हो जानी चाहिए। 'अहं ब्रह्मास्मि' की दशा तो इस समय सबसे बड़ी मानी जाती है और इसके समझने वाले, बड़े ज्ञानी। परन्तु क्या कोई अपने हृदय पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि वास्तव में उनकी यह दशा उत्पन्न हो गई है। गेहूँ का स्वाद यदि कोई पूछे तो लोग हल्का मीठा कह देंगे परन्तु जब तक चखा न जावे वास्तव में स्वाद विचार में नहीं आ सकता। बस यही हाल हमारे यहाँ अधिकतर ज्ञानियों का हुआ है कि बिना रसास्वादन किये पढ़-पढ़ा कर वर्णित परिणाम पर आ जाते हैं। इस दशा पर बहुत कुछ प्रकाश 'सत्य का उदय' (Reality at Dawn) में डाला गया है। संक्षेप में इतना कहता हूँ कि आत्मा और शरीर के मिलन बिन्दु पर हर ग्रन्थि में थोड़ा बहुत इसका ('अहं ब्रह्मास्मि')[५] अनुभव

---

५. **अहं ब्रह्मास्मि**—मैं ब्रह्म हूँ।—आजकल के तथाकथित ज्ञानी का यह सम्भवतः सबसे सामान्य चिह्न है जो दूसरों पर अपनी उपलब्धियों का सिक्का जमाने के लिए इस प्रकार के पद समुदाओं को यंत्रवत उच्चारित करता हुआ भ्रमण करता रहता है। वास्तव में इस प्रकार के शब्दों के मात्र उच्चारण करने से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। बल्कि जब इसकी दशा में वास्तविक आन्तरिक विलीनीकरण होता है तभी कोई ज्ञानी होता है। सच्चे

होता है। किन्तु इस ग्रन्थि में आकर यह अनुभव स्पष्ट हो जाता है और तबियत भी वैसी ही बन जाती है कि यही अनुभव ताजा रहता है। उसको यह अनुभव होता है कि सूर्य में प्रकाश और गर्मी, चन्द्र में दमक और शीतलता तथा नक्षत्रों में चमक सब मेरी ही है। यहाँ तक कि यदि कोई राम, कृष्ण या ऊपरी बड़ी आत्माओं की चर्चा करता है तो यह अनुभव होता है कि यह मेरी ही चर्चा है और इसके लिए तबियत में कोई संदेह शेष नहीं रहता। रमते रमते जब यह दशा पूर्ण हो जाती है तो दूसरा

अर्थ में यह अभ्यासी की पहुँच की स्तर के अनुरूप ही परमतत्व से अपृथकत्व की भावना की आन्तरिक चेतना के लिए प्रयुक्त होता है। इस पुस्तक में व्यक्त विचार के अनुसार यह एक आध्यात्मिक दशा है जो अन्तिम दशा तक पहुँचने की यात्रा में विकसित होती है। हर बिन्दु या ग्रन्थि पर इस प्रकार की कुछ चेतना किसी न किसी रूप में होती है। जैसे-जैसे कोई उच्चतर स्तरों तक पहुँचता जाता है वैसे-वैसे इसका और अधिक परिष्कार होता जाता है। सामान्यतया इसकी कलाएँ होती हैं। सबसे निम्नस्तर पर यह एक भावना के रूप में प्रगट होती है कि 'मैं ब्रह्म हूँ (अर्थात् अपृथकत्व)' फिर यह "सब कुछ ब्रह्म है" की भावना में बदल जाता है जिससे सार्वभौमिक अपृथकत्व की भावना का भान होता है। सबसे अन्त में यह "सब कुछ ब्रह्म से" की भावना का रूप ले लेता है जिससे हर दृष्टिकोण के अन्त का अर्थ निकलता है।

भेद खुलता है। अर्थात् जब हम इस दशा से इतना चिमट जाते हैं अथवा दूसरे शब्दों में इस अनुभव या दशा को भी उसमें लय कर देते हैं तब हमको ऊपर दिखाई पड़ने लगता है और इस समय हमारी तबियत ऐसी बन जाती है कि यह अनुभव कराती है कि जो कुछ भी है, वह है, और हर लय-अवस्था के बाद "जो कुछ भी है, वह है", को दशा संकेत रूप में अवश्य रहती है। परन्तु यहाँ पर वह चीज स्पष्ट रूप में आती है, इसलिए कि हम ईश्वरीय-मन्डल के बड़े क्षेत्र में अब मौजूद हैं। जब हम और आगे बढ़ते हैं और "जो कुछ भी है वह है" की दशा में लय हो जाते हैं तो हमें इस अनुभव के अतिरिक्त और कोई अनुभव नहीं होता कि "सब कुछ उसी से है"—हमा अज़ ओस्त !

यह बहुत बड़ी ग्रन्थि है और इसमें नहीं मालूम किन-किन दशाओं का निचोड़ है। एक चीज़ जो इस जगह की विशेष दशा है, मैं लिखे देता हूँ कि यहां पर पहुँचने पर अभ्यासी जब अच्छी उन्नति प्राप्त करता है तो जिस चीज़ को देखता है वह दिखाई तो देती है परन्तु उसकी उपस्थिति का भान नहीं होता है। इन

चीजों के अस्तित्व का प्रभाव हृदय पर बिल्कुल नहीं मालूम होता। मैंने इस क्षेत्र की मुख्य-मुख्य बातें ही ली हैं। इस ग्रन्थि पर यदि अभ्यासी का चाव है और इसके अनुसार अभिरुचि भी और साथ-साथ समर्थ पथ-प्रदर्शक मिल गया हो, तो लय-अवस्था और सारूप्यता होते-होते जब सारूप्यता की अन्तिम दशा आती है तब इससे आगे वाली ग्रन्थि में जाने की शुभ सूचना मिलती है।

आठवीं ग्रन्थि

भाग्य ने जोर किया और अभ्यास ने सहायता दी तो हम आठवी ग्रन्थि पर आ गये। यहाँ पर अब दृश्य ही बदल गया। जो दशायें हमको सातवीं ग्रन्थि पर मिलती हैं उनका सूक्ष्म रूप यहाँ पर मिलता है। यहाँ पर अभ्यासी को यह अनुभव होता है कि संसार स्वप्नवत् है और यह प्रकृति का क्रीड़ा-स्थल है। बैराग्य यहां पर पहुँचकर सुदृढ़ हो जाता है। इसके आगे फिर बैराग्य की गुज़र नहीं बल्कि उसका भी रूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बैराग्य यहां पर परिपक्व हो जाता है। हर वस्तु यहां पर हल्की दिखाई देती है। विचार में भारीपन नहीं

रहता और अभ्यासी शान्ति, स्थिरता तथा चैन का भागी बन जाता है और वह इस दशा का आनन्द प्राप्त कर लेता है कि जिसकी शान्ति बढ़ते-बढ़ते अन्त में वास्तविकता में परिवर्तित हो जावेगी। परन्तु भाई, अभ्यासी तो वही है जिसमें शान्ति के साथ-साथ कुरेदन और बेचैनी अवश्य रहे। यह वह चीज़ है जो कूड़ा-करकट, झाड़-झंखाड़ को साफ़ कर देती है और चलने के लिए मैदान बना देती है।

हम सुनते चले आये हैं और पढ़ते भी कि संसार स्वप्नवत् है और इसको ऐसा ही समझना चाहिए। मैं समझता हूँ कि केवल पुस्तकों के पढ़ने वालों ने संसार को इस प्रकार (स्वप्नवत्) नहीं देखा यद्यपि प्रचारक सदैव इसी पर जोर देते रहे। यह तो एक दशा है जो नियमित रूप से अभ्यास करते-करते इस तक पहुँचने पर विकसित होती है। यदि हम मन पर जबरदस्ती जोर डालकर यह समझ लें कि संसार एक स्वप्न है तो चीज़ कृत्रिम रहेगी। वास्तविक-स्थिति उत्पन्न न होगी। यह तो इस विशेष स्थान की दशा है जो मार्ग में पंथी को प्राप्त होती है। यदि कृत्रिम उपायों से हम दशा को

परिपक्व कर लेते हैं और इसके पश्चात् इस परिणाम पर आ जाते हैं कि हमको ज्ञान है, और हम संसार को स्वप्न समझते हैं तो यह स्थिति स्वयं को धोखा देने वाली सिद्ध होगी। इस स्थान की वास्तविक दशा शान्ति है। हम जब इसमें लय-अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तो इसके अर्थ यह होते हैं कि यहां की दशा को हमने अपना लिया है। और जब हम इस दशा से निकल कर सारूप्यता की दशा में आते हैं तो उस स्थिति का पूर्ण अनुभव होता है। इस स्थिति में कुछ ऐसी ताज़गी अनुभव में आती है जैसी कि गर्मियों में लू से पीड़ित व्यक्ति को नदी में स्नान करने के समय डुबकी लगाने के पश्चात् प्रतीत होती है। अब हम सारूप्यता की दशा में आ गये, या यों कहो कि हम यहां की जिन्दगी में जिन्दा हो गये, और फिर इस जिन्दगी को भी लय कर दिया तो फिर जो स्थिति उत्पन्न होती है वह नवीं ग्रन्थि पर पहुँचने का शुभ-संवाद देती है।

नवीं ग्रन्थि

अब हम नवीं ग्रन्थि में प्रवेश करते हैं। हमारे अनुभव का रूप परिवर्तित हो गया और अब हम इस दशा पर आ गये जहाँ से भूमा से वास्तविक सम्बन्ध प्रारम्भ होता है,

और हम एक ऐसे लोक में पहुँचते हैं जहां हमको यही अनुभव होता है कि अब हमारा नया जन्म किसी दूसरे संसार में हो गया है। अब इसमें हमारा प्रसार होता है और उसी का रसास्वादन करते-करते यह भी पता लगने लगता है कि जिस लोक में हमारा पुनर्जन्म होता है वह किसका लोक है। अर्थात् उसकी पहचान एवं अनुमान तबियत बतलाने लगती है और 'मालिक' की उपस्थिति को भी हृदय ग्रहण करता है। 'उसकी' महत्ता मन में इतना गहरा प्रभाव उत्पन्न करती है कि अपने आप 'उसकी' पूजा प्रारम्भ हो जाती है। इसलिए इस दशा में आने से पहले सांसारिक क्रियाशीलता लगभग समाप्त हो चुकती है और 'मालिक' और सेवक का सम्बन्ध ही सामने रहता है। 'वह मालिक और हम सेवक' इसका ही अनुभव इस ग्रन्थि पर रहता है और उसी के अनुसार 'मालिक' की मौजूदगी और उसका सम्मान हर स्थान पर दृष्टिगत रहता है। अपनी दशा एक अजीब अधीनता की होती है और तबियत में एक विचित्र नर्मी रहती है। यहाँ पर द्वेष-भाव समाप्त हो जाता है, और वास्तव में अब यहाँ पर ईश्वर की पहचान (दैवी ज्ञान) का

प्रथम पाठ प्रारम्भ हो जाता है। इस स्थान से अपना अस्तित्व (Self-existence) मिटना शुरू हो जाता है, और जितना ही अधिक हम इस स्थान में घुस पाते हैं, उसी सीमा तक हम अपना अस्तित्व मिटाने में सफल होते हैं। दर्शन-दीदार की झलक यहाँ से प्रारम्भ होती है? अब अपनी दशा क्या होती है? यदि इसको और स्पष्ट किया जावे तो यह बहुत कुछ हनुमान जी की दशा से मिलती-जुलती है कि जब कोई उनको उनकी शक्ति का भान कराता था तब उनकी हालत उभार पर आती थी वैसे वे विस्मृत से रहते थे। अभी और चले जाइये। हर स्थान पर लय-अवस्था व सारूप्यता का सम्बन्ध है। कहीं पर लय-अवस्था है तो कहीं पर सारूप्यता। अब यह दशायें अपने अपने क्रम से लय होकर सारूप्यता में पहुँचाती है और सारूप्यता भी जब लय-अवस्था पर आ जाती है तब दसवीं ग्रन्थि पर पहुँचने का शुभ सम्वाद मिलता है।

दसवीं ग्रन्थि

अब हम दसवीं ग्रन्थि पर पहुँच गये तो नवीं ग्रन्थि की दशा ने करवट ली और उसका रुख परिवर्तित हो गया। अब बन्दगी के इतने अभ्यस्त हो गये कि उसके घर को अपना घर

समझने लगे, अर्थात् यों कह लीजिए कि हममें अब कुछ 'स्वामित्व' की गंध आने लगी, परन्तु यह चोज कृत्रिम नहीं। यह दसवीं ग्रन्थि की दशा है जो वहाँ पहुँचकर स्वयं आना ही चाहिए। यहाँ पर वह दशा हो जाती है कि 'मालिक' का सामीप्य बढ़ने पर उसका प्रभाव अपने में अनुभव होने लगता है। जैसे नदी के निकट जाने पर तथा उसका बहाव देखकर अपनी तबियत में जो बहुधा स्वयं तरंगें उठने लगती हैं, वही दशा यहाँ पर अभ्यासी को अनुभव होती है और वह अपना सम्मान खुद करने लगता है। या यों कहो कि चन्दन की सुगन्ध के लिए हमें चन्दन के वृक्ष के पास जाना पड़ता है, परन्तु जब चन्दन घिस कर हम माथे पर अथवा शरीर पर लगा लेते हैं तो सुगन्ध अपने निकट आ जाती है और हम वहीं उसका आनन्द लेने लगते हैं। अब हम उसकी ड्योढ़ी पर पहुँच गये और वहाँ की शीतलता आने लगी। मालिक को भी अब यह अनुभव में आने लगा कि कोई सेवक उसकी प्रतीक्षा में है। कुछ समरूपता भी बढ़ने लगी, यद्यपि निकटता अभी दूर है। ईश्वर का काम यहाँ पर समाप्त है। इसके आगे उसकी भी

गुजर नहीं। आगे बढ़ने पर भूमा का सम्बन्ध प्रारम्भ होता है और बंधन से छुटकारा मिलता है। यह वह स्थान है जहां पर बिरला ही कोई पहुँचता है। यहाँ हवा की भी गुजर नहीं बल्कि वह हवा है जो बड़े ही परिश्रम और अभ्यास के पश्चात् प्राप्त होती है। या यों कहो कि हवा बदल जाती है और हवा का असल तत्व ही रह जाता है जिस पर हमें आगे चलना है। अब वह तत्व क्या है? उसे शून्य कहना तो उचित न होगा, यदि भूमा की छाया कह दी जावे तो भी उसका उपर्युक्त वर्णन नहीं हो पाता है। कारण यह है कि वह भी भारी है। बस यह कहना उचित मालूम होता है कि वहां भूमा मौजूद है और मन में केवल उसकी उपस्थिति का अनुभव मौजूद रहता है जो निश्चय करता है कि वहाँ कोई अविनाशी व अमिट अस्तित्व अवश्य है जिसकी ओर हमें जाना है। तब हमें समझना चाहिए कि हमने अगली ग्रन्थि पर आरोहण किया है।

ग्यारहवीं ग्रन्थि

जब यह बात हो गई तो हमने ग्यारहवीं ग्रन्थि पर कदम रक्खा। अब आवरण उलट गया और असलियत की झलक दीखने

लगी। तबियत बेबस हो गई··· । कभी टीस और कभी दर्द। हर समय उसी के पाने की खोज है। बिना उसके अब चैन व शान्ति कहाँ ? सच पूछो तो शान्ति भी अब विदा हो गई। अब उस स्थान पर क्या है ? ऐसे समझ लो कि जैसे शान्ति की दशा में से शान्तिपन खींच लिया जावे और फिर जो चीज अनुभव में आवे, वही दशा इस ग्रन्थि पर पहुँचने पर हो जाती है। यह चीज हमारे अनुभव में आई और फिर हमने उसको भी लय कर दिया। अब वहाँ पर क्या है ? सब कुछ तो चला गया, टीसन अवश्य शेष है। अब यह चीज लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक है, और इसकी परिसमाप्ति तब होगी जब हम असल दशा में मिल जावेंगे। अब हम सारूप्यता की अवस्था में हैं। होते-होते जब उसकी भी लय-अवस्था हो गई तो हम निखरी हुई सारूप्यता की दशा में प्रविष्ट हुये। इसने बारहवीं ग्रन्थि पर पहुँचने की सूचना दी।

बारहवीं ग्रन्थि

अब हम बारहवीं ग्रन्थि पर पहुँच गये। वहाँ क्या है ? यह जो कुछ भी चीज हमको विभिन्न लय अवस्थाओं और सारूप्यता की अवस्थाओं से प्राप्त हुई थी, अब वह भी लय हो

गई। अब हम उसकी सायुज्यता में स्वतः आ गये। यहाँ का दृश्य इतना स्वच्छ और निर्मल है कि सादगी भी सैकड़ों गुना इससे भारी है। यदि हम और आगे कदम बढ़ावें और कोई 'सादगी' से अच्छा शब्द प्रयोग करने के लिए मिल जावे तो वह भी इससे कई गुना भारी होगा। अब सायुज्यता चलती है और हमको एक नये प्रकार का जीवन प्राप्त होता है, जिसका अनुभव हमको आगे वाली ग्रन्थि पर होता है।

तेरहवीं ग्रन्थि

जब हम तेरहवीं ग्रन्थि पर पहुँचे तो जिन्दगी ही जिन्दगी है—शाश्वत जीवन। मैंने केवल बड़ी-बड़ी ग्रन्थियों का वर्णन किया है, क्योंकि छोटी-छोटी ग्रन्थियां बेशुमार हैं, किन्तु उनमें जो अन्तर है, वह अकथनीय है। यहाँ तक का अनुभव तो शब्दों के उलट-फेर ने बतला दिया। आगे शब्द नहीं मिलते जो इस हालत का वर्णन कर सकें। परन्तु हमारी यात्रा तो चलती ही रहती है और ऐसी अगणित ग्रन्थियाँ मिलती हैं, और लय तथा सारूप्य अवस्था साथ ही साथ चलती है। इन ग्रन्थियों पर आगे चलकर माया का भी अभाव हो जाता

है । यद्यपि बह ग्रन्थि बहुत आगे है और उसके बहुत बाद एक ग्रन्थि ऐसी भी आती है जहाँ पर लय और सारूप्यता प्राप्त करने पर अहंकार (अहं-भाव) लगभग समाप्त हो जाता है। उसके आगे उसकी शक्ल बदल जाती है । हजारों वर्षों में कहीं यह अवस्था प्राप्त होती है। यदि कहीं कोई सद्‌गुरु मिल जावे तभी बढ़ना सम्भव है । जिस किसी को सद्‌गुरु मिल गया है उसने हर ग्रन्थि की सैर की है और अन्त में उस समुद्र के किनारे पहुँचा है जहाँ पर ज्ञान की परिसमाप्ति है ।

हमारा लोगों से अनुरोध है कि वे इस लेख को देखें और फिर अपने आपको तौलें, तब मालूम होगा कि ज्ञान क्या है ? और ज्ञान का काम कहां पर समाप्त होता है। ज्ञान का काम वहीं पर समाप्त होता है जहाँ पर उसका अनुभव समाप्त हो जाता है और दशा एक नासमझ बच्चे की भाँति हो जाती है जो कुछ नहीं समझता। यह हालत वहाँ पर होती है जब हम इस अपार सागर के निकट पहुँच जाते हैं। यह स्थिति अज्ञान के दायरे में आती है और यही वास्तविक ज्ञान और असल हालत भी है ।

अन्तिम दशा

मगर भाई, यह भी अन्त नहीं है। हमें इससे भी आगे जाना है, परन्तु अब ज्ञान का सहारा छूट चुका है। अब तो वही चीज हमारी है जिसको मैंने अज्ञान[1] कहा है। वही दशा परिष्कृत होकर अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचा देगी। अन्य कोई चीज हो ही नहीं सकती। यहाँ पर सालोक्यता व सायुज्यता इत्यादि सब दशायें भी समाप्त हैं। अब हममें अज्ञान उत्पन्न हो गया, और ठीक भी है। सागर में वही मनुष्य अपने आपको डालने के लिए तैयार होगा जो उससे परिचित न हो। ज्ञानी मनुष्य सागर में कदम रख ही नहीं सकता। इसलिए कि वह उसके परिणाम को समझता है कि पग रक्खा और जिन्दगी की खैर नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि उसमें उतना ज्ञान है। हमारे अज्ञान ने अन्त में उस अथाह समुद्र में हमको उतार ही दिया और जब हम उसमें

---

१. देखिये, परिशिष्ट २।

जा पड़े तो हमको इसके छोर तक पहुँचने की लालसा होगी। इसलिए अब हम इसी विचार में बढ़ते चले जाते हैं। नौका का वहाँ पता नहीं, इसलिए कि वह तो यहाँ आने के पहले ही डूब चुकी थी। अब चल-चलाव है, और पैरते चले जाते हैं। यहाँ तक कि हम कोसों आगे बढ़ गये। यह अवश्य है कि यात्रा में हम को भाँति-भांति की लहरें और भाँति-भाँति की शिकने या सलबटे अवश्य मिलीं, परन्तु वह सब मौन थीं। सिवाय इसके कि उनके अस्तित्व का आभास अवश्य था। इस आभास को हम अन्दाज में लाते हुए बढ़े जा रहे हैं। यहाँ तक कि वह अन्दाज भी समाप्त हो गया। और भाई अन्दाज भी कब तक रहे, अन्त उसका भी तो होना चाहिए। अब सतह बराबर मिलती है, जहाँ पर कि अब शिकनें या सलवटें भी नहीं हैं। मैंने इस चीज को समझाने के लिए 'सत्य का उदय' (Reality at Dawn) में सात वृत्त बताये हैं। जब मनुष्य अधिक यात्रा करता है, तो यात्रा करते-करते कभी स्वतः ऐसी स्थिति आती है कि वह थकान भी भूल जाता है। यह अनुभव की बात है और इसको करके देखा जा सकता

है। इस प्रकार हमारा अज्ञान जिससे कि यह समुद्र का किनारा मिला था अब वह भी समाप्त हो गया। ख्याल तक में जब इस चोज की गुंजाइश न रही तो फिर किसी प्रकार भी अज्ञान अब शेष न रहना चाहिए। किन्तु हमें अभी और आगे जाना है।

अज्ञान का तो अन्त कर चुके। अब जो स्थिति भी उत्पन्न हो गई—जिसे न पैदा होना ही कह सकते हैं—उसके लिये बही 'तम अवस्था' का शब्द उपयुक्त है—'न प्रकाश न अन्धकार'। यही चीज हमको आगे बढ़ाती चली जाती है, और फिर इसका भी छोर नहीं। हम चाहे जितना भी चलते जायें यह चीज हमारे साथ निरंतर बनी रहती है। यदि किसी साहसी पुरुष में इस सीमा तक विशेष योग्यता उत्पन्न हो जाये कि वह आगे वाली चीज का अन्दाज कर सके, तो केवल इतना ही मालूम हो सकता है कि इससे आगे एक बिन्दु या वृत्त है, और जहाँ पर यह बिन्दु है, इसके चारों ओर वृत्त ही कहा जावेगा। ऐसी हस्ती संयोगवश ही आ सकती है, जो यहाँ पर इस केन्द्र बिन्दु का अनुभव कर सके, परन्तु खैर, बताये ही देता हूँ। मान लो यदि कोई

महान आत्मा हो गई और उसने उसके अन्दर का अन्दाज लगा लेना चाहा, तो वह वृत्त जिसके चारों ओर प्रकृति की शक्तियाँ प्रारम्भ होती हैं, उसमें कहीं झांकने की चेष्टा भी की तो वह वृत्त का किनारा उसे बाहर फेंक देता है। परन्तु खैर, यदि पिट-पिटा कर कहीं उसने कुछ अन्दाज भी कर लिया तो उसको कहने या व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं मिलते। यह मनुष्य की पहुँच की अन्तिम सीमा है। इससे अधिक पहुँच न कभी हुई है, और भविष्य में होने के बारे में भी जो जाने सो जाने। इस सीमा तक भी उन्नति होना लगभग असंभव है। वे सात वृत्त क्या हैं? वे समस्त-शक्ति का निचोड़ है जो केन्द्रीय वृत्त से प्रारम्भ होती है। वहाँ तक (केन्द्रीय वृत्त) पहुँच प्रायः असम्भव है। खैर, उपाय भी बतलाये देता हूँ। उपाय साधारण है, कोई बड़ी बात नहीं। जब हममें (हमारे हृदय में) उछलने का विचार आता है तो उस का स्वयं इस वृत्त से संबन्ध हो जाता है। अब यदि कोई व्यक्ति इतना साहस करे कि अपने इस विचार को उस वृत्त में लय कर दे, परन्तु शर्त यह है कि वह सतर्कता के साथ अपना हृदय भी देखता रहे तो कुछ इसका

अन्दाज हो सकता है, परन्तु केवल कुछ क्षणों के ही लिए। फिर उसको वहाँ से हटना पड़ेगा। हृदय पर दृष्टि रखने की इसलिए आवश्यकता है कि इसके फट जाने की सम्भावना है। अब मैंने उपाय बता दिया, लोग चाहें तो साहस करें।

आध्यात्मिकता में एक चीज विशिष्ट-समीहा अथवा स्पेशल विल होती है, उसको संभव है कि लोग कम जानते हों। जब समीहा का प्रयोग सबसे ऊँची आध्यात्मिक स्तर से किया जाता है तो यह अमोध हो जाती है। किन्तु यह स्मरण रखने की बात अवश्य है कि जिस ग्रन्थि तक यह समीहा पहुँचती है उसी हालत तक विकास होता है। इसे यदि कहीं केन्द्रीय मण्डल के सात वृत्तों के पार निश्चित कर दिया जाय तो यह अचूक ही हो जाती है। जो भी ध्यान बाँधा जावेगा उसका परिणाम अवश्य प्रकाशित होगा। यहाँ तक कि इसके नक्षत्रों की गति भी रोकी जा सकती है। इच्छा शक्ति की यही अमोधता ब्रह्म-गति है। धार्मिक-ग्रन्थों में ब्रह्म-गति की व्याख्या बहुत की गई है। मैंने थोड़े से शब्द उसको समझाने के लिए लिख दिये हैं, ताकि महात्मा लोग

अपनी तुलना कर सकें (अपनी पहुँच का अन्दाज कर सकें)। कहाँ तक लिखा जावे किन्तु भाई ऐसी हस्ती रोज-रोज नहीं आती। ऐसा मनुष्य अपनी समीहा केवल आध्यात्मिक-क्षेत्र में ही प्रयोग करता है, अथवा अन्य कार्यों में जो इससे सम्बद्ध हों। दूसरी ओर ध्यान जाना बहुत कठिन है।

समीहा की दशा क्या होती है ? इसमें व्याघात अथवा सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं, और जो चीज होना चाहती है हो जाती है। इतना अधिक आत्म-विश्वास हो जाता है कि इसके विरुद्ध बात तबियत में आती ही नहीं। बहुत से साहसी व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि उनमें अभ्यास प्रारम्भ करते ही यह चीज उत्पन्न होने लगती है किन्तु यह चीज अपनी ही सीमा में काम करती है। ऊँचे-ऊँचे क्षेत्रों में नहीं। यह रहस्य इसलिए लिख रहा हूँ कि कम से कम इसकी चेष्टा लोगों को करनी चाहिए। चाहे वह लौकिक कार्य हो या पार-लौकिक, जब कोई कार्य करने का विचार करे तो उसके न होने के विचार को स्थान ही न दे। यद्यपि इसका सम्बन्ध आध्यात्मिकता ही से है परन्तु इसके यह अर्थ

नहीं कि यह विज्ञान भौतिक-लाभ के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। आध्यात्मिक मनुष्य के लिए इन चीज़ों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक है, और वह जब चाहे इसका प्रयोग कर सकता है।

ज्ञान का विषय वर्णन करते हुये मैंने पदार्थ-सम्बन्धी बिज्ञान पर भी कुछ प्रकाश डाला है, परन्तु यह इस प्रकार है कि बहुत ध्यान पूर्वक विचार करने पर ही समझ में आवेगा। प्रकृति में निर्माण और विनाश दोनों की शक्तियाँ विद्यमान है। जहाँ कहीं निर्माण की शक्ति हैं वहाँ विनाश की शक्ति विद्यमान है। अब जो पहली ग्रन्थि मैंने पहले लिखी है, इसके बीच एक बिन्दु दाना सा है। हम आध्यात्मिकता में इसी को ले लेते हैं, इसलिए कि इस दाने से शाखें मकड़ी के जाले की भाँति निकलती है। हम इसी दाने में अपने आपको लय कर देते हैं, और इसी से उभर कर हम सारूप्यता की दशा में पहुँचते हैं। मैने यह भी लिखा हैं कि भूमा या ज़ात जहाँ पर वह असल दशा में, या जिस हालत में कह लो- स्थित है, उसके चारों ओर एक घेरा है जिसको समझने के लिए शक्ति अथवा प्रकाश का क्षेत्र कह लीजिये और वह किसी को अन्दर रहने नहीं देता। बस यही हाल

इस ग्रन्थि या दाने का भी है। इसमें भी एक प्रकार का वृत्त या घेरा स्थित है, परन्तु इसमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह अन्दर की ओर घुसने न दे। यह घेरा विनाशकारी है और अपने क्षेत्र में विनाश की स्थिति उत्पन्न कर सकता है अर्थात् किसी लौकिक या पदार्थ सम्बन्धी वस्तु को बनाने या बिगाड़ने में इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस शक्ति का प्रयोग हनुमान जी ने बहुत किया था। यही शक्ति थी जिसने हिन्द महासागर की गैस को लंका के जलाने में खींच दिया था, जैसा मैंने 'राजयोग का दिव्य-दर्शन' (Efficacy of Rajyoga) में लिखा है। इस प्रकार की विनाशकारी गैस को खींचने की विधि यह है कि अपनी इच्छा-शक्ति से उसको किसी विशेष स्थान पर केन्द्रित कर दिया जाता है और उसका प्रभाव भी वैसा ही होता है। यह भी हो सकता है कि उस वृत्ति की शक्ति किसी स्थान विशेष पर फेंक दी जावे। परिणाम यह होगा कि वह स्थान चाहे पर्वत ही क्यों न हो, सुरमा हो जावेगा। और इसी को यदि अच्छे कार्य के लिये प्रयोग किया जावे तो वही ज्योति पैदा होगी जिसके बारे में हज़रत मूसा के

विषय में कहा गया है कि उन्होंने पर्वत पर देखी थी। इस प्रकार इसमें दोनों कार्य अच्छे और बुरे लिये जा सकते हैं, परन्तु योगी की दृष्टि हमेशा अच्छाई पर रहती हैं। अतः केवल विशेष स्थितियों के अतिरिक्त वह इसका प्रयोग बुरे के लिये नहीं करता। इसी प्रकार आगे वाली ग्रन्थियों का हाल समझ लिया जावे।

एक रहस्य की बात मैं और बतलाता हूँ। हम भक्तिभाव में बहुधा यह कहते चले आये हैं कि बिना ईश्वर की इच्छा के एक पत्ती भी नहीं हिलती और यह सच भी है, परन्तु यदि मैं यह कह दूं कि बिना भक्त की इच्छा के ईश्वर भी नहीं हिलता, तो नहीं मालूम महात्मा लोग मेरे बारे में क्या विचार करेगें। परन्तु बात वास्तव में यही है, और सत्य बात कहना ही चाहिए ताकि वास्तविकता सबके समक्ष प्रकट हो जावे। अपने विषय में तो मैं यह कहता हूँ कि जब से मैंने अभ्यास करना आरम्भ किया, सदैव अपने गुरू महाराज समर्थ गुरू महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज (फ़तेहगढ़ यू०पी०) को ही अपना सर्वस्व समझा, और ईश्वर करे यह भावना सदैव बनी रहे। मैंने दूसरे से सम्बन्ध

नहीं रक्खा, इसलिए कि बन्धन से छुटाने वाले आप ही सिद्ध हुये। खैर मतलब पर आता हूँ। ईश्वर के पास मन नहीं होता। ईश्वर का अर्थ केन्द्र या भूमा से है। यदि इसमें मन होता तो इस पर भी कर्म का सिद्धान्त लागू हो जाता और वह भी हमारी भाँति संसार में होता। मन एक औजार अवश्य है जो 'उसने' हमको दिया है। इसका एक भाग हमारे पास है और दूसरा 'उसके' निकट है। हमारा रुख़ दोनों ओर है। एक भाग से हम लौकिक कार्य करते हैं और दूसरे से पारलौकिक। जब हम अपने निकट वाले मन को उसके निकट वाले सिरे से सम्बद्ध कर देते हैं तो सम्पूर्ण में एक ही धारा प्रवाहित हो जाती है, और इसी के अभ्यास की आवश्यकता है, ताकि जो खटक उसके निकट वाले भाग में है वही खटक हमारे निकट वाले भाग अर्थात् मन में उत्पन्न हो जावे। अब मान लीलिए कि किसी ने अपना मन ऐसा बना लिया और उसको केन्द्रीय मण्डल भाग्यवश मिल गया और इन सात वृत्तों को पार करके अथाह सागर में तैरने का अवसर मिल गया। फिर क्या है ? वह भूमा से अत्यन्त समीप हो जाता है।

यदि कहीं भूमा का सम्बन्ध उसमें उत्पन्न हो गया जिसको आगे चल कर भूमा में एक प्रकार की लय-अवस्था कहते हैं तो सब कुछ हो गया और उसकी दौड़-धूप आध्यात्मिक क्षेत्र में समाप्त हो गई। केवल थोड़ी सी बातें शेष रह गईं, जिनको यदि व्यक्त करूँ तो इसका अनुमान कल्पना तक में नहीं ठहरता। इस लय-अवस्था के पश्चात् जो जीवन आता है वही जीवन है, जो केवल पूर्ण आत्म निषेध के पश्चात् प्राप्त होता है। अब उस चीज को भी आप लय कर दें तो वह जीवन भी एक निखरा हुआ जीवन कहा जावेगा। इस निखरे हुये जीवन को भी हम लय कर दें तो उसके बाद जो कुछ भी है वही असल है। कहीं इसको भी लय कर दिया तो उसके पश्चात् जो कुछ आता है उसका खाका खींचने के लिए शब्द नहीं मिलते। (अब इसमें वह चीज पैदा हो जावेगी जो निखरी हुई जिन्दगी की लय-अवस्था के बाद प्राप्त होती है।) अब उसमें और भूमा में कहने मात्र का अन्तर रह जाता है। आगे बस यही है कि भूमा का अनुमान पूर्णतः हो जावे। इसके पश्चात् फिर कुछ नहीं कहा जा सकता। यद्यपि विचार इससे आगे

जाता है और अन्त में कहीं भी नहीं मिलता। हम जब अन्तिम दशा में आ जाते हैं और ईश्वरीय आज्ञायें मिलने लगती हैं तो समझ काम नहीं करती अर्थात् यह अनुभव नहीं होता कि आज्ञायें कहाँ से आई हैं। जब यह दशा हो जावे तो यही समझना चाहिए कि अब वह दशा आ गई है जहाँ पर यही कहा जा सकता है कि जब तक भक्त न हिलावे ईश्वर भी नहीं हिलता। जब हम इस अन्तिम दशा पर पहुँच जाते हैं तो फिर हम अद्वैत के क्षेत्र में आ जाते हैं। यह वास्तव में अद्वैत का क्षेत्र है। फिर भी यदि हमें इसका भान रह जाता है तो वास्तविक अर्थ में द्वैत की समाप्ति अभी नहीं हुई। दूसरे शब्दों में, अन्तिम अपरिवर्तनशील दशा अभी उत्पन्न नहीं हुई। वास्तव में यह दशा वह है कि जहाँ पर द्वैत और अद्वैत दोनों का भान समाप्त हो जावे। यही इस अन्तिम गुत्थी की चरमावस्था है। यहां पर वास्तविक अर्थ में—

'मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जां शुदी।
ता कस न गोयद बाद-अज़्-ई मन दीगरम् तो दीगरी॥

अर्थात् 'मैं' तू हो गया, तू 'मैं' हो गया। मैं शरीर हो

गया, तू प्राण बन गया, जिससे कि भविष्य में कोई यह नहीं कह सकता कि तू और है, और मैं और।" जब हम इस दशा में रम जाते हैं और इस सीमा तक लय हो जाते हैं जितना कि हो सकते हैं तो कौन-कौन चीजें हममें उत्पन्न हो जाती हैं ? मैं तो यही कहूँगा कि वह समस्त शक्तियाँ जिनका कि कारण, केन्द्र है, हममें उत्पन्न हो जाती हैं। इस अवस्था में पहुँचा हुआ अभ्यासी वही काम कर सकता है जो उस महत्-शक्ति के द्वारा व्यक्त होते हैं। (यदि वे ऐसा न कर सके तो अद्वैत के न कोई अर्थ रहे और न वास्तविकता ही रही।) तमाम दैवी शक्तियां उसकी आज्ञा के अधीन रहती हैं और वही उनको शक्ति प्रदान करता है जिससे प्रकृति के कामों में बाधा न पड़े। पवित्र ग्रन्थों में बहुधा ऐसा विवरण मिलता है कि विभिन्न यज्ञों के द्वारा भिन्न-भिन्न देवताओं को शक्ति प्रदान की जाती थी और इसी के द्वारा इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति होती थी, परन्तु यह विधि केवल उनके लिए थी जिनमें द्वैत मौजूद है और वही इस चक्कर में फँसते हैं। परन्तु उस अभ्यासी में जो कि अद्वैत में आकर उसकी भी याद भूल गया

उसमें जो कुछ है वह असल ही असल है । उसमें यह शक्ति आ जाती है कि यदि वह चाहे तो संसार की आयु कम कर दे या जो परिवर्तन इसमें करना चाहे वैसा ही उत्पन्न कर दे । इच्छा-शक्ति इसकी हर बात में काम देगी । इसमें समय अवश्य लगेगा क्योंकि रचना में भी काफी समय लगा । सर्वोत्कृष्ट अति-चेतना की स्थिति (Highest type of Super-conscious State) में ध्यानपूर्वक देखने से यह ज्ञात हुआ है कि संसार की रचना में एक लाख बीस हजार वर्ष लगे हैं । यद्यपि भूमा के नीचे जो शक्ति का क्षेत्र है उसमें केवल एक ही झटका लगा था परन्तु उसका प्रभाव प्रकट होते-होते और रचना की सामग्रो एकत्र होते-होते उपर्युक्त समय लग गया ।

पाठकगण के मनोरंजन के लिए यह भी बतलाता हूँ कि समस्त क्रियाओं की गति घड़ी की सम दिशा में (Clock wise) थी और अब यदि उन्हें विषम दिशा की ओर (Anti-clock wise) प्रेरित कर दिया जावे तो संसार नष्ट होने लगेगा । सूर्य व चन्द्र का प्रकाश कम होने लगेगा, और संसार की आयु कम होने लगेगी ।

केन्द्र के चारों ओर एक वृत्त है जो हद है और जिससे पार होना, जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, असम्भव है। हाँ यदि कोई महान् शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति हो तो वह कदाचित् कुछ सेकेण्ड के लिए उसमें उचक कर झांक सके। यदि इस वृत्त के चारों ओर अपनी इच्छा-शक्ति से एक सजीव विचार विश्व के समाप्त करने का बांध दे और उसकी धाराओं को केन्द्रीय-मण्डल में संकलित कर दे तो वही चीज केन्द्र की शक्ति से मिल कर स्पन्दन पैदा कर देगी और फिर उसकी परिवृद्धि होने से वही शक्ति नीचे को उतरना आरम्भ हो जावेगी। अब जितना वेग इसमें पैदा कर दिया जावेगा उतनी ही तेजी से यह चीज बढ़ेगी। दूसरा उपाय यह भी है कि जो शक्ति प्रवाहित है उसकी अपनी इच्छा-शक्ति से केन्द्र में खींचना प्रारंभ कर दे। ऐसा करने से गतियाँ घड़ी की विषम दिशा में स्वयं परिचालित हो जावेगीं। यदि इच्छा-शक्ति भी इस पर लगा दी जावे तो प्रभाव शीघ्र पैदा होगा, और यदि वह केन्द्र के वृत्त पर इच्छा-शक्ति का वेग छोड़ देता है तो वह चीज शनैः-शनैः सफल होगी।

जब यह हाल है तो दिव्य या आन्तरिक दृष्टि के विस्तार का कोई अनुमान नहीं कर सकता। यद्यपि मैंने सब कुछ कह दिया फिर भी उसकी व्याख्या बहुत बचते-बचते की है। यदि कोई व्यक्ति इस सीमा तक उन्नति कर चुका हो और वह प्रकृति में कोई विशेष परिवर्तन चाहता हो तो इसकी विधि बहुत सरल है। यह असंभव है कि वह उसमें सफल न हो, उसके लिए हर एक बात संभव है। उसका उपाय यह है कि अपनी उस असल दशा में अपने ख्याल को इस प्रकार बाँध दे कि जिसमें शब्द गायब हों और एक ख्याली चीज उसके अभिप्राय को व्यक्त करे तो वही चीज इस काम को करने के लिए उद्धत हो जावेगी और वही ईश्वरीय आज्ञा होगी, परन्तु केवल उस समय जबकि, जैसा कि ऊपर वर्णित है, भूमा से ऐसा सम्बन्ध हो जावे कि उसका वही अन्दाज उत्पन्न हो जावे, तो जो चीज इसमें उत्पन्न की जावेगी उसका भी वही अन्दाज बनने लगेगा। उदाहरण के लिए यदि एक तार के सिरे पर झन्कार दी जावे तो कुल तार में वही झन्कार या स्पन्दन उत्पन्न हो जावेगा। बन्दे की पहुँच जब इस सीमा तक हो जाती है तो बन्दगी तो

कायम रहती है परन्तु वह बन्दा नहीं रहता। यह उसकी सौजन्यता है कि जिस संबन्ध ने उसको यहाँ तक पहुँचाया है, उसका हृदय उस संबन्ध से अलग नहीं होता। इसी के अनुसार आज्ञाएँ भी वह इसी तरह प्राप्त करता है जिनकी संसार में आवश्यकता है। उसका निजी स्वार्थ कुछ नहीं रह जाता। वह एक प्रकार से भूमा का अंश हो जाता है। यह दशा किसी के भाग में नहीं आती, सिवा ऐसे अवसर पर जब कि नियति संसार में परिवर्तन चाहती है। इस कोटि की सत्तायें एक समय में दो कभी नहीं हो सकतीं। समस्त ब्रह्मांड में एक ही समय में एक ही सत्ता ऐसी हो सकती है और वह भी जब प्रकृति की आवश्यकता होती है।

यह तो भाई ज्ञान की अन्तिम सीमा मैंने बतला दी। यदि इसकी अभिव्यक्ति शब्दों में की जावे तो इसके लिए 'ज्ञान' उचित शब्द न होगा। इस सीमा तक अभ्यासियों को पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। सम्भव है कि इसके आगे कुछ और ज्ञात हो जावे। यह संकेत भविष्य में आने वाले लोगों के लिए है और जो लोग वर्तमान काल में हैं वह भी इस पर विचार करें।

परिशिष्ट–१

जिस समय सृष्टि नहीं थी और केवल एक परम तत्व ही विद्यमान था 'काल' अथवा 'समय' का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मौलिक आधार में सृष्टि के विचार का उद्भव हुआ उस समय इसमें कुछ भी नहीं था। यह चलता रहा और गति के कारण शक्ति में परिवर्तित हो गया जिसकी प्रवृति क्रियाशीलता अथवा कार्य की रही। परन्तु कार्य होने के लिए निश्चित ही एक क्षेत्र अथवा आधार की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रथम मौलिक विचार एवं तत्पश्चात उत्पन्न होने वाली वस्तु के बीच का संक्षिप्त ठहराव (अन्तर) अथवा, दूसरे शब्दों, में कारण एवं कार्य के बीच का संक्षिप्त ठहराव पहले से ही विद्यमान था। इसे हम समुचित रूप से 'अवधि' अथवा 'काल' या 'समय' कह सकते हैं। और उसके कार्य के लिये क्षेत्र बन गया। इस प्रकार काल-शक्ति में विलीन होकर सृष्टि के आगे की क्रिया के लिये स्वयं ही शक्ति स्वरूप हो गया।

सामान्य नियम के अनुसार विचार जब गहराई में चला जाता है तो एक प्रकार का ठहराव उत्पन्न करता है जिसमें बहुत अधिक शक्ति होती है। केन्द्र के सम्बन्ध में गहराई का प्रश्न बिल्कुल ही नहीं उठता क्योंकि उसमें पूर्ण समरसता है। केन्द्र में शक्ति के वेग का विचार मन की सीधी क्रियाशीलता, आदि का भी अभाव था क्योंकि केन्द्र अथवा परम ब्रह्म परम तत्व होते हुए भी मन-विहीन था।

इस प्रकार प्रथम विचार एवं कार्य के बीच में मात्र एक शक्ति रही जिसे हम 'काल' अथवा समय कहते हैं। वही शक्ति हमारी समग्राहिता के अनुसार हमें भी प्राप्त हुई। अब इस शक्ति के उपयोग के लिए हमें इसे केन्द्र जो सब कुछ एवं परम् तत्व है के वृहत्तर शक्ति में विलीन करना होता है। इस संसार में कोई भी वस्तु यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान का मेगाटन बम भी इस शक्ति की बराबरी नहीं कर सकता। आधुनिक विज्ञान अभी तक कदाचित इसके महत्व को पूरी तरह नहीं समझ सका है और यदि इसने समझ भी लिया होता तो इसका प्रयोग केवल विनाशकारी कार्यों के लिए ही करता।

जो भी हो इस शक्ति को पृथ्वी पर उतारा जा सकता है और तीव्र इच्छा-शक्ति के प्रयोग द्वारा कार्य में लाया जा सकता है। उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए योगी के पास यह शक्ति ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से विद्यमान रहती है। मेरे विचार से भौतिक विज्ञान को इस महान शक्ति की जो वस्तुतः सभी शक्तियों का मूल है, जानकारी के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता।

परिशिष्ट—२

अज्ञान एवं ज्ञान एक ही वस्तु के दो छोर हैं। एक निश्चित सीमा तक इसे अज्ञान कहते हैं उसके बाद यह ज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। वह एक चुम्बक के दो ध्रुवों की भाँति हैं। इस तरह अविद्या का अस्तित्व विद्या के बिना और विद्या का अविद्या के बिना सम्भव नहीं है। यदि एक है तो दूसरे को भी होना ही है। इसका तात्पर्य यह है कि अज्ञान के पर्दे के फटने पर विद्या और अविद्या दोनों की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार अविद्या की परिधि में विद्या और अविद्या दोनों का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। वही 'तम' की अवस्था है जो दोनों से परे है। यही वास्तव में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति होती है जिसमें न तो विद्या होती है न अविद्या। तब वहाँ क्या है? इसमें से कोई भी नहीं एक अवस्था जिसमें पूर्ण-गुप्ति, पूर्ण अनभिज्ञता अथवा पूर्ण ज्ञान

शून्यता जिसे लगभग अबोध अवस्था जैसा कि बालापन में होता है--कह सकते हैं। अज्ञानता वास्तव में ज्ञान की पराकाष्ठा होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हम अज्ञान के स्तर से प्रारम्भ करते हैं और ऊँचे अज्ञान (अथवा जिसे मैं पूर्ण-अज्ञान कहता हूँ) की स्थिति में समाप्त करते हैं। ज्ञान का क्षेत्र (सामान्यतया प्रचलित अर्थ में) केवल एक माध्यमिक मंजिल है। वास्तव में, यह जहाँ तक ज्ञान का क्षेत्र है, वह सचमुच अज्ञानावस्था है।

अज्ञान के पर्दे के फटने के बाद जो उदित होता है उसे क्या कभी ज्ञान कहा जा सकता है? निश्चय ही नहीं, हालाँकि दोनों विपरीत दशाओं को दृष्टि में रखने पर लोग ऊपरी तौर पर उसे ऐसा ही कहते हैं। तो, क्या यह ज्ञान का अर्थ रखता है? नहीं, ज्ञान का अर्थ है उसका बोध होना जो 'स्व' से परे है। आत्मसाक्षात्कार का अर्थ परम तत्व से एकीकरण अथवा उसमें विलीनी-करण है। उस स्थिति में ज्ञान का प्रश्न कभी उठ ही नहीं सकता। तब वह क्या हो सकता है--ज्ञान हीनता, अनभिज्ञता, अज्ञानता अथवा और कुछ? संक्षेप में यह उसी प्रकार की कोई चीज हो सकती है यद्यपि इसको

व्यक्त करना लगभग असम्भव ही है। पूर्ण अज्ञान जैसा कि मैंने कहा है सम्भवतः सबसे ठीक जान पड़ता है।

ऐसा माना जाता है कि एक व्यक्ति जो आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलता है अन्धकार से प्रकाश की ओर जाता है। मान लिया जाय कि अन्धकार अविद्या है (जैसा कि सामान्यतया प्रदर्शित किया जाता है) और प्रकाश विद्या। सहज मार्ग मे प्रकाश को ध्येय नहीं स्वीकार किया जाता है। यह मात्र एक बीच की अवस्था है जिससे होकर हम अन्तिम स्थिति की यात्रा करतें हैं जो न तो प्रकाश है, न अन्धकार, अपितु दोनों से परे हैं। इस प्रकार निश्चय ही हम अविद्यया से प्रारम्भ करके विद्या से होकर उस स्थिति तक पहुँचते हैं जो न तो अविद्यया है न विद्या बल्कि दोनों से परे। उस स्थिति को जो न तो प्रकाश है न अन्धकार अथवा न तो अविद्या है न विद्या किस शब्द द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ? क्या विश्व के शब्द भन्डार में उसके लिए कोई शब्द है ? निश्चय ही नहीं। इस लिए इसे जैसा कि मैं कहता हूँ—'पूर्ण अज्ञान' ही कहा जाय, जो प्रारम्भिक अज्ञान के स्थूलतम अवस्था से भिन्न है।